॥ श्रीः ॥

नैपालका इतिहास ।

मुरादाबादनिवासी सुखानन्दमिश्रात्मज पण्डित
बलदेवप्रासाद मिश्रकृत
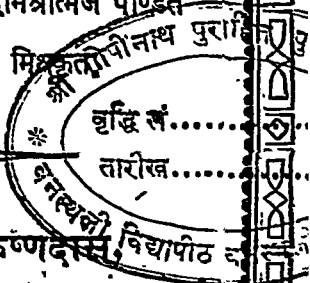
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
मालिक-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
कल्याण-बंबई.

संवत् १९८६ शके १८५१.

मुद्रक और प्रकाशक-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास

मालिक-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्-प्रेस, कल्याण-बंबई.

भूमिका ।

आजकल इतिहासग्रंथोंका प्रचार धीरे २ हो रहा है, यह बड़े आनंदकी बात है । वास्तवमें ऐतिहासिक ग्रंथोंका प्रचार होनेसे प्राचीन काल व आधुनिक कालकी बहुतसी बातें जानी जाती हैं। आजकल बहुतसे यंत्राधीशोंका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है. आशा है कि, हिन्दी भाषासे अनुराग रखनेवाले पाठकगण शीघ्रही बहुतसे आवश्यकीय इतिहासोंको अपनी मातृभाषामें प्रचलित हुआ देखेंगे । प्राचीन कालकी कलाकौशल, प्राचीनकालका धर्म, प्राचीनकालका आचार व्यवहार यह सब बातें इतिहाससेही जानीजाती हैं । यही विचारकर " **श्रीवेङ्कटेश्वर** " (स्टीम्) यंत्रालय और " **श्रीवेंकटेश्वर समाचार** " के स्वामी श्रीमान् सेठ **खेमराज श्रीकृष्णदासजीने** इसके बनानेकी मुझे आज्ञादी । उक्त श्रीमान्की आज्ञाको शिरपर धार अत्यंत परिश्रम और विचारसे Indian Antiquary, Journey Asiatic Society. of Bengal, Francis Hamilton's Kingdom of Nepal, Kirkpatrick's Nepal, Wright's History of Nepal. Dr. Bhagwan Lall Indraji's History of Nepal, C. Bendall's journey in Nepal. विश्वकोष, वंशावली इत्यादि ग्रन्थ और सामयिक पुस्तकोंसे सार सङ्कलन करके यह इतिहास तैयार किया. आशा है इसको निहारकर पाठकगण मेरे परिश्रमको सफल करेंगे ।

इस इतिहासके प्रस्तुत करनेमें मुझको केवल तीन मासकाही समय मिला है, अत एव यदि कहींपर कुछ भूल पाईजाय तो पाठकगण दयादृष्टिसे सूचित करदें तो दूसरीवारके संस्करणमें उस भूलका सुधार करदिया जायगा ।

मैं अपने परमहितकारी मित्र पं. कन्हैयालाल उपाध्याय, मुन्नालाल शर्मा गौतम, टेहरी गढवाल निवासी श्रीमान् पं. हरिदत्तजी शास्त्री और पंडित श्रीलालको धन्यवाद देताहूं. कारण कि, उपरोक्त मित्रोंने इस पुस्तकके संकलनमें समय २ पर मुझको बडी सहायता दी है ।

बलदेवप्रसादमिश्र,

दीनदारपुरा. मुरादाबाद.

नैपालका इतिहासकी विषयानुक्रमणिका ।

ति विषयानुक्रमणिका

श्रीः ।

नैपालका इतिहास ।

हिमालयकी तलैटीमें भारतवर्षके वीच नैपाल एक स्वाधीन राज्य है । इस राज्यकी वर्त्तमान उत्तर सीमामें तिब्बत राज्य, पूर्वसीमामें शिकम राज्य, दक्षिण-सीमामें हिन्दोस्थान और पश्चिमसीमामें कुमायूं तथा रुहेलखंड प्रदेश है । सन् १८१५ ई० के पाहिले कुमायूं और उसके पश्चिममें शतद्रुनदीके किनारेतक इस राज्यकी सीमा गिनी जातीथी. सन् १८१६ ई०की सन्धिमें यह सव स्थान अंग्रेजोंके अधिकारमें आगये । अव केवल पश्चिममें काली वा सरयू नदी, दक्षिणमें अयोध्याके वीचका डूण्डवा पर्वत चम्पारनमें सोमेश्वर पर्वतकी ऊंची भूमि और पूर्वमें मेंची नदी और शृङ्गाट पर्वतही नैपाल और अंग्रेजी राज्यके वीचमें सीमारूपसे विराजमान है ।

शक्तिसङ्गम तंत्रमें नैपालकी सीमा इस प्रकारे लिखी है:—

" जटेश्वरं समारभ्य योगेशान्तं महेश्वरि ।
नैपालदेशो देवेशि साधकानां सुसिद्धिदः ॥ "

अर्थात् जटेश्वरसे लेकर योगेश्वरतक नैपालदेश है, यह स्थान साधकोंको सिद्धिका देनेवाला है ।

नैपालनामकी उत्पत्ति ।

हिमालय पर्वतकी तलैटीके जिस पहाडी अंशमें गोर्खा जातिका वासहै, उसको तिव्वतीय और हिमालयके ऊपरवाले अहिन्दू पहाडी भाषामें " पाल " देश ÷ कहते हैं ।

वो ~ ~सान नैपालराज्यके पूर्वांश और शिकमदेशको वहांकी पुरानी असभ्य
नहीं है । ाति ' ने. ' नामसे पुकारतीथी । लेपूचा, नेवार और दूसरी कई एक परस्पर
ग्राम है

होताहै । तिव्वतीय भाषामें ' पाल ' शव्दका अर्थ पशम है । हिमालयके इस अंशमें
नगर वीन ेम) वाले वहुतसे वकरे पायेजाते हैं, इस कारण वहलोग इस देशको
३–के कहते हैं, ऐसा अर्थभी होसकता है

मिलीहुई जातियोंकी चैन भारतीयभाषामें 'ने' शब्दका अर्थ पर्वतकी गुफाहै, जहां घरकी भांति आश्रय लेकर मनुष्य रहसकें। तिब्बत, ब्रह्म और लामालोगोंकी भाषामें 'ने' शब्दका अर्थ पवित्र गुफा या देवताको समर्पित रक्षित पवित्रस्थान अथवा पीठ है। इससे सहजमेंही जानाजाता है कि, जो गोर्खा जातिके रहनेका स्थान हिमालयकी तलैटीमें पाल देशहै, जहां कापाकास्तूप * और स्वयम्भूनाथ आदि 'ने' अर्थात् पवित्र तीर्थ स्थान हैं, उनकी समष्टिको ही नैपाल (अर्थात् पाल राज्यान्तर्गत पवित्र तीर्थ वा रहनेकी जगह) कहते हैं और फिर कोई २ कहते हैं कि,इस पालदेशके जिस भागमें नेवारजातिका वास था, वह पहिले 'ने' नामसे पुकारा जाताथा। 'ने' नामक स्थानमें रहनेसेही इस जातिका नाम 'नेवार' हुआ है। इस नेवारजातिने पहिले बौद्धमतको मानकर अपने देशमें भगवान् बुद्धकी कीर्तिको प्रकाशित किया और उनकेही नामसे इस स्थानका नाम नैपाल हुआ। यह जगह 'लेप्चा' कथित 'ने' नामक स्थानेसे अलगहै।

"नैपाल" यह नाम पूरे देशका नहीं है; जिस स्थानमें इस राज्यकी राजधानी काठमाण्डू नगर है, उस स्थानका नामही नैपाल है, उससेही सम्पूर्ण राज्यका नामकरण हुआ है। यह राज्य पूर्व पश्चिममें २५६ कोस लम्बा, और उत्तर दक्षिणमें ३५ से लेकर ७५ कोस चौडा है। अक्षा ० २६8२४। से ३०0१७। 6 ० और द्राघि 8 ८०8 ६–से ८८०१४। पू ०। भूमिका परिमाण ५४००० वर्ग माइल है।

प्राकृतिक विभाग।

नैपालका राज्य स्वभावसेही पश्चिम, मध्य और पूर्व इन तीन बडी २ दरियोंमें विभक्त है। पर्वतके चार ऊंचे शिखर इन तीन उपत्यका–विभागके प्रधान कारण हैं। कुमायूं देशमें जहां अंग्रेजोंका अधिकार है नन्दादेवी शिखरकी छोटी २ नदियोंके मिलनेसे कालीनदी बनी है। यह नदी ही नैपालराज्यकी पश्चिम दरीकी सीमा है। नन्दादेवीसे सौ कोस पूर्वमें धवलगिरिशिखर (अर्थात् दुधगङ्गा), विराजमान हैं। इसके ठीक दक्षिणमें गोरखपुर बसा हुआ है। यह शिखर मध्य उपत्यकाकी पश्चिम सीमाकी भांति स्थित है। नन्दादेवीशिखर और धवलागिरि-

* An account of this stamp, see proc of the Bengal Asiatic society 1892

शिखर इन दोनोंके बीचमें पश्चिम उपत्यका स्थित है। धवलगिरिसे १० कोस पूर्वकी ओर गोसाईंथान शिखर स्थितहैं। पूर्वोक्त नैपालनामक उपत्यकाके ठीक उत्तरमें यह गोसाईंथान पर्वत शोभायमान है। पर्वतका यह शिखर पूर्व उपत्यकाकी पश्चिम सीमा और धवलगिरि तथा गोसाईंथान पर्वतके बीचमें मध्य उपत्यका होकर खडा है। गोसाईंथानसे ६५ कोस पूर्व शिकम राज्यमें जहां अंग्रेजोंका अधिकार है वहां काञ्चन जंघा शिखरही नैपालकी पूर्व उपत्यकाकी पूर्व सीमा है। इस पर्वतके कितनेही दाक्षिणके अंशभी शिकम व नैपालराजकी पूर्व सीमाके सिवाने माने जाते हैं।

पहाडी मार्ग।

हिमालयकी पीठको भेदकर तिब्बत जानेके लिये बहुतसे पहाडी मार्ग हैं। किन्तु यह मार्ग बहुधा तुषारसे ढकेहुए रहते हैं। इनमेंसे जो मार्ग सबसे नीचीभूमिमें होकर गया है, वह यूरोपके सबसे ऊंचे पर्वतसे भी ऊंचा है।

१-थकला-खरमार्ग 'बू' जडिमार्ग नन्दादेवी और धवलगिरि शिखरके बीचमें है। जहां शतद्रु नदी उत्पन्न हुई है उस स्थानके निकट घाघरा नदीसे कर्णाली नामक उपनदी निकलकर इस मार्गसे तिब्बतको छोडतीहुई नैपालमें जाघुसी है। जहां कर्णाली नदीने तिब्बतकी सीमामें पैर रक्खाहै, वहां थकनामक ग्रामहै। इस ग्रामके नामसे ही इस मार्गका नाम थकला हुआहै। थकग्राममें तिब्बतके नमकका बडाभारी व्यापार होताहै।

२-मस्तं मार्ग--धवलगिरिसे २० कोस पूर्वमें है। धवलगिरिकी तलेटीमें तिब्बतकी ओर इस नामका एक स्थान है। उसके नामसेही इस मार्गका नामकरण हुआ है. यद्यपि मस्तं स्थान धवलगिरिके उत्तरमें है तथापि वहांका राजा नैपालको कर देता है। मस्तं उपत्यका हिमालयके बरफीले उत्तर और दक्षिण पर्वतोंके बीचके एक ऊंचे स्थान पर स्थित है। यह राज्य गोरखाराज्यमालके अन्तर्गत नहीं है। मस्तंगिरि मार्गके उत्तरभागमें प्रधान मार्गके ऊपर मुक्तिनाथ नामका एक ग्राम है जो तीर्थस्थान कहलाता है और इस स्थानमें भी तिब्बती लवणका व्यापार होताहै। मस्तंसे आठ दिनमें और धवलगिरिके निकटवाली माली भूमिके प्रधान नगर बीनी शहरसे मुक्तिनाथ तीर्थ चार दिनका मार्ग है।

३-केरां मार्ग; गोसाईंस्थान पर्वतके पश्चिममें है।

४-कुटीमार्ग-गोसाईंथान पर्वतके पूर्वमें हैं। यह दोनों मार्ग राजधानी काठमाण्डूके निकटही हैं इसकारण इनमेंही होकर तिब्बती तीर्थयात्री और व्यापारी प्रतिवर्ष शीतकालमें नेपालको आते हैं। नेपालकी राजधानी काठमांडूसे तिब्बत राजधानी लासाको जानेका मार्ग केरा होकरही गया है। टेरी नामक स्थानमें यह मार्ग कुटीमार्गके मार्गमें मिलगया है। कुटीमार्गही तिब्बतमें जानेके निमित्त सीधा और छोटा है। किन्तु इस मार्गमें टट्टू नहीं चल सकता।

चीनको जानेके लिये नेपालके राजदूत कुटीमार्गसे जाते हैं, किन्तु लौटनेपर चीनी टट्टूकी सवारी लानेके कारण केरां पथसे आतेहैं। सन् १७९२ ई० के युद्धमें चीनी सेना इस केरां मार्गसेही आई थी। कुटीमार्गके पश्चिमवाले तरफसे ढके पहाडको खुर्द्दभूमि (ताम्रभूमि) कहते हैं और उसके पूर्वी पर्वतका नाम तांबाकोशी है इस पर्वतसे ताम्रकोशी नदीकी उत्पत्ति हुई है। जो कोशीनदीकी एक उपनदी है। भोंटिया नदी भी (कोशीनदीकी सात नदियोंसे पृथक्) इस कुटी मार्गमें होकरही वहती है।

५-हतियामार्ग, कुटी मार्गसे २० । २५ कोस पूर्वमें है । कोसीनदीकी सात उपनदियोंमें प्रधान अरुणनदी भी इस मार्गसे होकर नेपालमें प्रवेश करतीहै।

६-वल्लं वा वलञ्चनमार्ग; काञ्चनजंघाके पश्चिममें नैपालकी पूर्वसीमाके अन्तमें यह मार्गहै। तिब्बतीलोग शीतकालमें इन सम्पूर्ण मार्गोंसे होकर नैपालमें आते जातेहैं।

नदीकी अववाहिका।

नैपालके जिन तीन विभागोंका वर्णन किया है यह और भी तीन नामोंसे पुकारे जातेहैं। नैपालमें तीन प्रधान नदीहैं. घाघरा, गण्डकी और कोसी; ये क्रमानुसार पश्चिम और पूर्व उपत्यकाके वीचमें होकर वही हैं. क्रमशः ये तीनों उपत्यका इन नदियोंके नामसे प्रत्येक नदीकी अववाहिका कहीजाती हैं। इनके अतिरिक्त गण्डकी और कोसी नदीके वीचमें नैपाल उपत्यका (दरी) है। इसमें ही काठमांडू नगर वसाहुआहै, यहींपर वाघमती नदी वहती है। यह नदी मुंगेरके सामने गंगाजीमें मिलीहै। इन चार नदियोंकी अववाहिकामें पहाडी नैपालका समस्त भूखंड स्वयंही विभक्त है। इसके अतिरिक्त पहाडी नैपालके दक्षिणमें जो भूभाग नैपालराज्यके अन्तर्गत है, वह "तराई" नामसेही विख्यात है।

राज्यविभाग ।

ऊपर कहेहुए प्राकृतिक विभागभी अनेक खण्डोंमें वँटेहुएहैं ।

१-पश्चिम उपत्यका वा घाघरा अववाहिका स्थान-२२ खंडोंमें विभक्तहैं । इन वाईस खण्डोंको वाईस राज्य कहतेहैं । इन बाईस राज्योंमें बाईस राजा या ज़िमींदार हैं, उनमेंसे एक राजा प्रधान और इक्कीस राजा उसके अधीन रहतेहैं । जुमला, जगवूंकोट, चाम, आचाम, रुगम, भूसीकोट, रोयाला, मल्लिजम्भ, वलहं, दैलिक, दारमेक, दोती, सुलियाना, वमफी, जेहरी, कालागांव, धडियाकोट गुट-और गूजर यह वाईस राज्यहैं । इसमेंसे जुमला राज्यही प्रधानहै । वही दूसरे इक्कीस राज्यों, पर शासन करता है । जुमला राजकी राजधानी त्रिभा चिन्ह है । इस राज्यका स्वामी गोरखियोंसे पराजित होनेके पहिले छयालीस राज्योंका स्वामी था । कालीनदी और गोरखाराज्यमें यह ४६ राज्य थे उनमेंसे वाईस कालीनदीकी अविवाहिकामें और छब्बीस गण्डकीनदीकी अविवाहिकामें हैं। यह समस्त राजालोग जुमलाके महाराजको मछली, पशु इत्यादि वस्तुओंसे कर देतेथे । यद्यपि जुमलाराज्यका अव वैसा प्रभाव नहीं है, तोभी दूसरे राजालोग अवतक उसको चक्रवर्त्ती मानकर नियमित कर देतेथे । उन छयालीस राज्योंमेंसे छब्बीस राज्य वहादुर शाहने नैपालमें मिला लिये । यहांके राजालोग अवभी जुमलाराज्यसे राजाकी उपाधि पाते और राजवंशीय ख्यातिसे मानेजाते हैं । अव तो यह लोग केवल नैपालके जागीरदारहोहैं । इन राज्योंकी आमदनी ४ । ५ हजारसे लेकर ४ । ५ लाखतककी है । सवके पास अस्त्रधारी सेवक हैं । जिनकी संख्या कहीं चारसौ पांचसौ और कहीं चालीस पचासतक है ।

जुमलाराज्यके पीछेही दोतीराज्यका नाम लिया जासकताहै । इसकी राजधानीका नाम दोती (द्युति) वा दिपैत (दीप्ति) है । इस राज्यकी लोकसंख्या और राज्योंसे अधिकहै । दोती नगर कर्णालीनदीकी श्वेतगङ्गा नामक शाखाके वायें तटपर और वरेली शहरसे ४२॥ कोस उत्तर पूर्वमें वसा हुआहै । यहां दो दल पैदलहै और कुछ तोपेंभी रहतीहैं ।

सुलियाना-यह नगर अयोध्याकी सीमाके अन्तमें है, यहां नैपाली छावनी है । लखनऊसे साठ कोस उत्तरमें वसा हुआहै । सुलियाना शहरके २५ कोस उत्तर पूर्वमें " पेन्ताना " शहरहै । इस शहरमें नैपालियोंका सिलहखाना और वारूदखानाहै ।

यहां शोरा वहुतायतसे पायाजाताहै। सुलिमन मढी नामक विख्यात उपत्यका रासी नदीके दोनों किनारोंपर फैली हुई हैं।

२-मध्य उपत्यका वा गण्डक अववाहिका प्रदेश-नैपालीलोग प्राचीनकालसेही इस देशको जानते हैं और सप्तगण्डकी उपत्यकाके नामसे पुकारते हैं। सप्त गण्डकीका यह अर्थ है कि, गण्डकी नदीकी उपादान स्वरूप सात नदियां। यह सातों नदीही धवलगिरि और गोसाईंथान शिखरके वरफीले स्थानोंसे उत्पन्न हैं। सात नदियोंके नाम यह हैं-भरिगर, नारायणी या शालग्रामी, श्वेतगण्डकी, मरस्यांगडी (मत्स्यांघ्रि) धरमडी, गण्डी और त्रिशूलगङ्गा। यह सब उपनदी एक स्थानमें मिलकर फिर तीन शाखामें वटगई हैं। फिर जिस स्थानमें मिलकर गण्डक नाम धारण करके सोमेश्वर पर्वतके एक मार्गद्वारा विहारमें घुसी हैं। उस पंहाडी मार्गको त्रिवेणी कहते हैं। त्रिशूलगङ्गाके उत्पत्तिस्थानके पास छोटे वडे २२ तालाव हैं। इनमेंसे गोसाईंथान शिखरपर गोसाईं कुण्ड या निलखियत (नीलकण्ठ) कुण्डही वडाहै, और इस सरोवरके नामानुसारही सम्पूर्ण पर्वतको गोसाईंथान कहते हैं। सरोवरके वीचमेंसे कुछेक नीला और अंडेके आकारका एक पहाडी टुकडा उठा हुआ है। यह जलको भेदकर नहीं उठा है, वरन जलसे एक फुट नीचा है। स्वच्छ जल होनेसे स्पष्ट दिखाई देताहै इसकोही लोग नीलकण्ठ-महादेवकी प्रतिमा बनाकर पूजते हैं। आषाढ श्रावण और भादोंमें यहां असंख्य यात्रीगण आयकर स्नान और नीलकण्ठकी पूजा करते हैं। यह मार्ग जैसा दुर्गम है वैसाही भयंकर है। इस कुण्डके उत्तर किनारेपर एक ऊंचा पर्वत है। इस पर्वतके तीन शिखरमेंसे तीन झरने निकले हैं। इन तीनोंकी जलधारा तीस फुट नीचे गिरकर एक दूसरे सरोवरमें इकट्ठी होती है। इस त्रिधाराका नाम त्रिशूलधारा है। सुनते हैं कि, समुद्रमथनेके समय विषपान करनेके पीछे महादेवजी विषकी ज्वाला और प्यासके मारे घवराकर हिमालयके इस वरफीले स्थानमें जलकी खोज करने आयेथे। यहां जल न पाकर पर्वतमें एक त्रिशूल मारा उससे तीन सोते निकले। पीछे महादेवजीने नीचे लेटकर इस त्रिधाराको पान किया तवसे इस शयन स्थान गोसाईंकुण्ड वा नीलकण्ठ सरोवरकी उत्पत्ति हुई।

सरोवरका अंडाकार शिलाखण्डही उन शायित महादेवकी प्रतिमा गिनीजाती है। तीर्थयात्रीलोग कहते हैं कि, सरोवरके तटपर खडे होकर देखनेसे ऐसा ज्ञात होता है कि, मानो भगवान् नीलकण्ठ सर्पशय्यापर सरोवरमें सोये हुए हैं।

मि. ओल्डफील्डका अनुमान है कि, यह पत्थरका समान शिलाखण्ड पूर्वकालमें किसी वर्फकी शिलाके साथ सरोवरमें इसही भांतिसे गिरकर स्तंभित होगया है । इस तीर्थस्थानमें एक छोटे पत्थरका वैल व डेढ फुट ऊंचे सर्पके सिवाय दूसरी कोई प्रतिमा नहीं है, कई स्तंभभी हैं पहले उनमें एक वडा घंटा लटकताथा, किन्तु अव वह घंटा टूटगया। सम्पूण गोसाईंथान पर्वतपर और कहीभी शिवमूर्तिका चिह्न नहीं पायाजाता। इस सरोवरके आगमनमार्गमें चन्दनवाडी गांवके निकट एक फुट ऊंचा एक शिलाखंड गणेशप्रातिमाके नामसे पूजाजाता है। इसको " लौडीगणेश " कहते हैं। इस गोसाईंकुण्डसे उत्पन्न होनेके कारण गण्डककी पूर्व उपनदीका नाम त्रिशूलगंगा है। सूर्यकुण्ड नामक सरोवरके उत्तरांशसे त्रिशूलगंगाकी एक दूसरी उपनदी वेत्रवती उत्पन्न हुई है। इस सूर्य्यकुण्डसेही टाडी या सूर्य्यवली नदी भी निकली है। देवघाट नामक स्थानमें मूर्य्यवली त्रिशूलगंगामें मिलगई है । यह देवीघाट नयाकोट (नवकोट) नामक एक उपत्यकामें है । जो तीर्थस्थान माना-जाता है। इस स्थानकी अधिष्ठात्री देवी भैरवीका मंदिर नवकोट शहरमें हैं, प्रत्येक वर्ष वरफ गलजानेपर जव यात्रीलोग यहां आते हैं, तव दोनों नदीके संगमस्थानमें लम्बे २ तख्ते और बडे २ पत्थरोंसे एक मंदिर तैयार करके उसके भीतर इन देवीकी पूजा कराते हैं। सुनते हैं कि, देवीकी प्रतिमा पहिले इसही स्थानमें थी, फिर स्वप्नाज्ञासे दूसरी जगह स्थापित करदीगई। टाडी वा त्रिशूलगङ्गाका वेग स्वभा-वसेही अधिक है तिसपर वरसातमें इतनी वढती है कि, दोनों किनारे टूटजाते हैं, इस कारणही देवीने स्वप्नमें आज्ञा देकर अपनी मूर्ति दूसरी भूमिपर उठवा ली। ऊपर जिन छब्बीस राज्योंका वर्णन किया गया है, वह घाघराके खादरमें गिनेजाकर वाईसराज्यके स्वामी जुमला राज्यके अधीन थे। उनके नाम यह है-टानाहुं गोल-कोट, मालीभूम, शतहुं, गडहुं, पोखरा, भडकोट, रोसिं, धोरिं, धोयार, पाल्पा, वेतूल, तानसेन, गुल्मी, पश्चिमनवकोट, खचिवा, खाञ्चे, इसम्या, घरकोट, मुषी-कोट, पश्चिम थिली, सल्लियाना, वांघा, पैसोन, लट्हून, दं, काक्षि, लमजुङ्ग और प्रखन। अव यह सम्पूर्णही गोरखाराज्यमें मिलगये हैं । गोरखालोगोंने गण्डककी सारी खादरकी मालीभूम, खर्पा, पाल्पा और गोर्खा इन चार भागोंमें वांटली है। मालीभूम स्थान ठीक धवलगिरिके नीचे भारिंगर नदीतक फैलाहुआ है । इसकी राजधानी विनीशहर नारायणी नदीके किनारेपर वसा है। खची स्थान मालभूमके दक्षिणपूर्वमें स्थित है। पापूला स्थान अधिक वडा न होनेपरभी सवसे अधिक प्रयो-

जनीय विभाग है जो गोरखपुरकी सीमाके अन्तमें है । इसके उत्तरमें नारायणी नदी है। इसके नीचे गोरखपुरके ठीक उत्तरमें ' वैतूल खास" नामक तराई स्थान है. यह तराई अयोध्याके अन्तर्गत तुलसीपुरसे गण्डक नदीके पश्चिममें पाली शहरतक फैली हुई है। शालवनमें पर्वतकी निचाई और दक्षिणांश है। पश्चिम नवकोट विभाग गण्डकनदीके पश्चिममें स्थित है। यह पापूला प्रदेशकाही एक अंश है। वर्तमान गोर्खा-लोगोंके प्राचीन पुरुष राजपूत लोग ईस्वीकी वारहवीं शताब्दीमें मुसलमानोंसे हार-कर पहिले इसी स्थानमें आकर वसे थे। पीछे श्वेत गण्डकीके तटपर लमजुं स्थानमें उठगये। पापूला नगरही प्रधान शहर है वैतूल और गुल्मी यह दो-शहर भी प्रसिद्ध हैं। पापूला नगरसे २॥ कोस पूर्वकी ओर तानसेन शहर वसा हुआ है। यह पापूलाकी सेना रहती है। इस स्थानमें एक दरवार वाजार और टकसाल है। इस टकसालमें पैसे वनते हैं। पापूलामें गुरांग जातिके लोग कपासके कपडे वनाकर उनका व्यापार करते हैं।

गोर्खा राज्य गण्डककी खादरके पूर्वोक्त अंशमें त्रिशूलगङ्गा और मरस्यांगडा नाद-याके वीचमें स्थित है। राजधानी गोर्खानगर ' हनुमान वनजङ्ग ' पर्वतके ऊपर धरमडी नदीके किनारे काठमाण्डू नगरसे नवकोटके मार्ग होकर १३ कोस दूर है। गोर्खाप्रदे-शके पश्चिम दक्षिणांशमें पोखरा उपत्यका है। इस उपत्यकाका प्रधान नगर पोखरा, श्वेत गण्डकी नदीके किनारे वसा हुआहै । यह शहर वडा है । मनुष्यसंख्याभी अधिक है। यहां तांवेकी वस्तुओंका व्यापार प्रसिद्ध है। प्रतिवर्ष एक मेला होताहै उसमें पोखरेका उत्पन्न हुआ सब अन्न और तांवेके वर्तन विकते हैं। नैपाल पहाडीसे पोखरा पहाडी वहुत वडी है। इस जगह वहुतसे कुंड हैं । सबसे वडा कुंड इतना वडा है कि, परिक्रमा करनेमें दो दिन लगतेहैं। यह सब सरोवरही प्रायः वहुत गहरे हैं इनके किनारेसे तली कोई १५० । २०० फुट नीचे है, इस कारण खेतीका इनसे विशेष उपकार नहीं होता । पापूला और वेतूल स्थानके वीचमें गण्डकके पश्चिम किनारेपर गोङ् तालीमढी नामक पहाडी और गण्डकके पूर्वमें चितवन (वा) चैतनमढी नामक पहाडी तथा इसके उत्तरमें माखनमढा नामक पहाडियें विशेष प्रसिद्धहैं। चितवन पहाडीमें रावती नदी वहतीहै जो भीमफेडी नामक स्थानके कुछ पूर्वमें शेषपाणि पर्वतसे निकलकर सोमेश्वर पर्वतके उत्तर गण्डकमें मिलगई है । इस नदीके ऊपर ही हेटवाडा शहरहै। चितवन पहाडीमें वडे २ वृक्षोंके वनकी जगह वडी घासका जंगलही अधिक है। इन

जंगलोंमें गैंडार अधिक होते हैं। पश्चिम और मध्य पहाडोंके प्रधान शहरोंमें होकर एक वडा मार्ग है। जो काठमाण्डूसे नवकोट, गोर्खा, टानाहुं (उत्तरमें एक शाखाद्वारा लमंजु) पोखरा, शतहुं, तानसेन, पाल्पा (दक्षिणमें एक शाखाद्वारा वेतूल) गुल्मि, पेन्ताना और सालियाना होकर दोति (दीपैत) तक गया है। धोतिसे जगरकोट और जुमलातक एक शाखाहै।

३–पूर्व उपत्यका (वा) कोशी अववाहिका प्रदेश--यह खादर साधारणतः " सप्तकौशिकी " नामसे विख्यातहै। मिलञ्ची व इन्द्राणी, भुटियाकोशी, ताम्वा (ताम्र) कोशी, लिखु, दूधकोशी, और तामोर (वा) ताम्वर नामसे सात उपनदियोंको मिलाकर कोशी वा कौशिकी नदीकी उत्पत्तिहै। यह सात नदियें तुषार क्षेत्रसे निकलकर समान अन्तरसे वहतीहुई वर्षक्षेत्र या वडक्षेत्र नामक स्थानमें सव मिलगई हैं, फिर कोशी या कौशिकी नामसे वहकर पुरनियामें राजमहल पर्वतके पास गङ्गामें मिलीहैं, मिलञ्ची वा इन्द्राणीनदी भुटियाकोशीके साथ मिलगई है। ताम्वाकोशी, लिखु, और दूधकोशी यह तीनसंकोशी (स्वर्णकोशी) नदीमें मिलगई हैं। पीछे यह दो युक्तनदी और अरुण तथा ताम्वोर वडच्छत्रघाटमें आकर मिली हैं। अरुणनदीसे कोशीकी खादर दो भागोंमें वढी है। अरुणके दक्षिणकिनारेपर दूधकोशीतक फैलाहुआ जो भूखण्डहै वह किरातदेशके नामसे विख्यातहै, और वामतटके भूखण्डको लिम्वुआना कहते हैं। यह दो स्थान फिर छोटे २ सूवोंमें विभक्तहैं। प्रत्येक सूवेमें चार पांच गांव हैं। लिम्वुआना पहिले सिकिमराजके अधिकारमें था पीछे राजा पृथ्वीनारायणने सदाके लिये नैपालमें मिलालिया। यहां वीजापुरमढी उपत्यकामें वीजापुर शहर एक प्रसिद्ध स्थान है। कोशी खादरके दक्षिणमें जो तराई है उसकोही खासकर नैपालकी तराई कहते हैं। वह दो भागोंमें विभक्त है, जंगल तराई और यथार्थ तराई।

नैपालकी-तराई।

नैपाल तराई पश्चिममें और कानदीसे, पूर्वमें मीचीनदीतक फैली हुईहै, लम्वाई करीव ११० कोसकी है। इसके उत्तरमें चेरियाघाटी पहाडियें और दक्षिणमें पुरैनिया जिलाहै, तिरहुत, चम्पारन आदि जिलोंकी सीमाके अन्तमें दोनों राज्यकी सीमाको वतानेवाली स्तम्भावलीहै। जहां कोसीनदी नैपालकी तराई छोडकर अंग्रजी राज्यमें घुसीहै, वहां नैपाल तराईका विस्तार केवल ६ कोसकाही है, दूसरी

जगह कोई १० कोस होगा । दस कोसकी विस्तारवाली यह भूमि लम्बाईमें दो भाग हुईहै । उत्तरांशमें अर्थात् चेरियाघाटी पर्वतमालाके दक्षिणमें गण्डकीके किनारेसे कोसीके किनारेतकके स्थानको भावर वा शालवन कहते हैं । विशौलिया नामक स्थानके पश्चिमसे शालवनका फैलाव क्रमशः कम होतागया है । इस वनमें वस्ती नहीं है केवल नदीके किनारे जहां खेतहैं वहां कुछ टूटी फूटी झोपडियें देखी जाती हैं । शालवनमें शाल, देवदारु आदि वडे २ वृक्ष उपजते हैं । चेरियाघाटी पहाडियोंके ऊपर यह वृक्ष वहुत वडे २ होतेहैं । गण्डक वा मीचीनदीके वीचमें वाघमती वा विष्णुमती, कमला, कोसी और कोनकाई नदियेंही प्रधानहै । कोसीको छोडकर शेष सव नदियें ही ग्रीष्मकालमें तराईको छोडकर पार होजाती हैं । कितनीही नदियें गर्मीमें सूख जाती हैं, किन्तु कभी २ वनके पार होकर भी फिर उनको वहते हुए भी देखा जाता है । तथापि वरसातमें यह नदियें एक होकर वडे वेगसे वहती हैं ।

नैपाल तराईके दक्षिणांशमें अर्थात् शालवनके दहिनी ओर यथार्थ तराई है । ओरेकासे कमला नदीतक इस तराईका फैलाव अधिक है और कमलासे कोसीतक कम होता गयाहै । कोसीके पूर्वमें मीचीतकके तराई प्रदेशको मोरङ्गदेश कहते हैं, उसका विस्तार २॥ कोससे अधिक कहीं नहीं है । इस समस्त तराई प्रदेशमें नैपालराजका अधिकार नहीं है । वहांका शासनकर्त्ता खत्तावङ्गनामक स्थानमें रहताहै । वह विसौलियासे कई कोस पूर्वमें है । उस स्थानपर दो दल सेनाभी सदा तैय्यार रहती है । जो ठीक तराई है वह वढा, परसा, रोचत, शलयसप्तारि और मोहतारि इन चार जिलोंमें विभक्त है । गण्डकके पासवाले पहिले जिलेमें होकरही काठमाण्डूको मार्ग गयाहै । विशौलियाके पास परसानामक स्थानके वीचमें सन् १८१५ ई० में कप्तान सिलवी हारेथे वहां उनकी दो तोपें शत्रुओंके हाथ लगीं । रोचत जिला पारसाकी सीमातक वाघमतीतक फैला हुआहै । यामिनी नदीके किनारे रोचतजिलेकी सीमामें वाघमतीसे ७॥ कोस पश्चिमको सिमरौन नगरका खंडहर दिखाई देताहै । वहांपर गंभीर वनहै । उस टूटे फूटे स्थानमें पुराने मिथिला राज्यकी राजधानी थी । उस कालमें मिथिलाराज्य पूर्व पश्चिमसे गण्डक और उत्तर दक्षिणमें नैपालकी पर्वतमालासे गङ्गाके किनारेतक वसाहुआ था । सन्१०९७ई०में मिथिलाके राजा नान्यपदेवने सिमरौन नगरको वसाया—सन् १३२२ ईसवीमें दिल्लीके वादशाह गयासुद्दीन तुगलकने नान्यपवंशीय हरिसिंहदेवको जीतकर सिमरौन नगरको

उजाड दिया । हरिसिंहदेव नैपालमें भागा और नैपालको जीतकर गद्दीपर वैठा. वाघमतीके किनारे वाहरवार गांव है जिसका जलवायु, अतिउत्तमहै । सन् १८१४ ईसवीको नैपालकी पहिली लडाईमें मेजर ब्राडरसने इस स्थानको ही घेर कर जीताथा.

शल्य सप्तारी जिला वाघमतीसे कमलानदीतक वसा हुआहै। इस जिलेकी सीमाके अन्तमें पुराने नगर जनकपुरका खंडहर दिखाई देताहै । मोहतारी जिला कमलासे कोसीनदी तक फैलाहुआहै । कोसीके दाक्षिण किनारे सीमाके पास भानुरवानामक स्थानमें सेना रहतीहै, कोसीके पूरव मीची नदीतक तराईका नाम मोरङ्गाहै । जिसकी भूमि इकसारहै, परन्तु कीचड जल वायु और रोगोंसे भरी हुई है । तराईभरमें यह स्थान सवसे अधिक स्वास्थ्यका विगाडनेवालाहै, नदियोंका जल भी वहुत दूषित है, तथा सवही वस्तु विषैली हैं । मोरङ्गाको छोडकर तराईकी दूसरी भूमि साफ सुथरी और वहुत अन्न उत्पन्न करनेवाली है, ईख, अफीम और तमाखूभी इसमें भलीभांतिसे होसकता है । कोसीके पिछले जंगलोंमें हाथियोंकी संख्या दिन २ कमती होती जातीहै । मोरङ्गामें अव वहुत हाथी पायेजातेहैं, किन्तु पहिलेसे वहां भी कम होगये हैं ।

नैपाल उपत्यका ।

गोसाईं थान पर्वतके अन्तर्गत धेवङ्ग पर्वतके ठीक दाक्षिणमें सप्तगण्डकी और सप्तकौशिकीके वीच जो ऊंची उपत्यका है, उसहीका नाम नैपाल उपत्यकाहै । यह उपत्यका त्रिकोणाकार है, लम्वाई पूर्व पश्चिममें १० कोस और उत्तर दाक्षिणमें चौडाव ७॥ कोस है । पश्चिममें त्रिशूल गङ्गानदी है, पूर्वमें मिलाचिया इन्द्राणी नदी है । उपत्यकाके चारों ओर पर्वत हैं, उनमें उत्तरमें धेवङ्ग पर्वतमालामें शिवपुरी, काकानि, पूर्वमें महादेव पोखरा शिखर, देवचौंक (देवचोया), पश्चिममें नागार्जुन पर्वत और दाक्षिणमें शेषपाणि पर्वतमालामें चन्द्रागिरि, चम्पादेवी और फूलचौका (फूलचोया) आदि पर्वत शिखरही ठीक सीमारूपसे स्थित हैं । नैपाल उपत्यका समुद्रसे ४५०० फुट ऊंचे पर है । चारों ओर छोटे २ पर्वत शिखर होनेके कारण चारों ओर और भी छोटी २ कई दरी हैं । यद्यपि उनमें स्वभावसेही अन्तर पडा हुआ है, तथापि वे नैपाल उपत्यकामें गिनीजाती हैं । किनारेकी इन समस्त उपत्यकाओंमेंसे दाक्षिण पश्चिममें चित्तालिंग उपत्यका (वाघमतीकी उपनदी पानौनीसे धुलनेवाली) है । पश्चिममें धूना और कालपू उपत्यका (त्रिशूलगंगाकी धूना और

कालपु उपनदियोंके किनारे) उत्तरमें नवकोट उपत्यका (उसके निकट टोडी लिखू और सिन्दूरा नामक त्रिगंगा इत्यादि नदियोंकी छोटी २ समस्त उपत्यका और पूर्वमें वनेपा उपत्यका) स्वर्ण कोसीकी उपनदीसे धुलती हुई यह कई एक लिखने योग्यहैं । इन सम्पूर्ण उपत्यकाओंमें प्रवेश करनेके लिये पहाडी मार्ग हैं ।

नैपालकी पर्वतमाला ।

नैपाल उपत्यकाके चारों ओरकी पर्वतमाला विशेष प्रसिद्ध है । इनके शिखर परस्पर मिलेहुए हैं, इस कारण पहाडी मार्ग और नदीकी धारके अतिरिक्त दूसरी किसी ओरसे इन उपत्यकाओंमें प्रवेश नहीं किया जासकता ।

उत्तरका शिवपुरी पर्वत ८ हजार फुट ऊंचाहै । उसके शिखर शाल और सिन्दूर वृक्षोंसे घिरे हुए हैं, तथा दूसरे पर्वतोंसे यह वडा भी है । पश्चिमके काकानि पर्वतके साथ शिवपुरी पर्वतका मेल है । दोनोंके वीचमें " सङ्गला " नामक पहाडी मार्ग है । काकानि पर्वत ७ हजार फुट ऊंचा है ।

पूर्वोत्तरवाले मणिचूर पर्वतके संगभी शिवपुरी पर्वतका मेलहै, किन्तु कोई पहाडी मार्ग नहीं है पहाड स्वयंही घूमगयाहै मणिचूर पर्वत ७ हजार फुट ऊँचाहै ।

उपत्यकाके ठीक पूर्वमें महादेव पोखरा शिखरहै जो सात हजार फुट ऊंचाहै । इसके संग पूर्वोत्तर कोणवाले मणिचूर पर्वतका मेलहै । दोनों शिखरकें वीचमें कुछ ऊंची पर्वतमाला फैली हुईहै ।

दक्षिणपूर्वमें फूलचोया या फूलचौक पर्वतहै, जहांपर गंभीर जंगलहै और लम्बाईमें वहुत दूरतक चलागयाहै । इसकी ऊंचाई आठ हजार फुट है । महादेव पोखरा शिखरकी ओर इसमेंसे रानीचोया नामका एक शिखर वाहर निकलता हुआ है । इन दो पर्वतोंमें होकर वनेपा उपत्यकामें जानेका पहाडी मार्गहै । पश्चिमकी ओरसे महाभारत शिखरनामक एक पर्वत वाघमतीके किनारेतक चलागयाहै । फूलचोया पर्वतके वहुत ऊंचे शिखरपर सिन्दूर वनके वीच देवी भैरवी और महाकालका मन्दिर है । इन दो हिन्दू मन्दिरोंके पासही वौद्धोंके मंजुश्रीका मन्दिरभी है । इस पर्वतसे नैपाल उपत्यकाका समतल क्षेत्र और हिमालयके तुषारसे घिरेहुए शिखर मनोहर दिखाई देतेहैं ।

उपत्यकाके ठीक दक्षिणमें पूर्वोक्त महाभारत शिखरहै उसकीही पश्चिम सीमासे होकर वाघमती नदी नैपाल उपत्यकासे वाहर निकलीहै । चारोंओरके पर्वत घेरेमें इस नदके सिवाय और कहींभी विभिन्नता नहीं है ।

दक्षिण पश्चिममें चन्द्रगिरि पर्वत छः हजार छः सौ फुट ऊंचाहै । इसके पूर्वांशको हाथीवन कहतेहैं । जहां वाघमती वहतीहै । चन्द्रगिरिके दक्षिण पूर्ववाले शिखरका नाम चम्पा देवीहै ।

उपत्यकाके ठीक पश्चिममें महाभारत पर्वतके पूर्व इन्द्रस्थान शिखरहै, यह ठीक पर्वत शिखर नहींहै । इसका पृष्ठभाग कुछ झुका हुआहै । नैपाल उपत्यकासे १००० । १५०० फुट ऊंचाहै । यथार्थमें यह इसके पश्चिमी देवचोया या देवचौक पर्वतका अंशहै । इन्द्रस्थान गहरे वनसे ढका हुआहै । दक्षिणभागमें ऊंचे स्थानपर कुछ गहरी एक सरोवरहै, उसके किनारेपर दो मंदिरहैं जहां हाथीकी पीठपर इन्द्र और इन्द्राणीकी प्रतिमा विराजमानहै । इन्द्रस्थान पर्वतके ऊपर केशपुर और चव्वक नामक दो शहरहैं । इसका पूर्वांश थानकोटके नीचे और एक उपत्यका चन्द्रागिरिकी तल्टीमें है । यह देवचोया पर्वत नागार्जुन, महाभारत और फूलचोया पर्वतके संग मिला हुआहै ।

यह पर्वत नैपाल उपत्यकाकी ठीक सीमाके अन्तमें हैं । इनके अतिरिक्त उत्तर पूर्व कोणमें भीरवन्दी और कुमारपर्वत नामके दो शिखरहैं, भीरवन्दी पर्वत नैपाल उपत्यकाके सब पर्वतोंसे ऊंचाहै ? सबसे ऊंचे शिखरको कौलिया कहते हैं । जो उपत्यका भूमिसेभी चार हजार फुट ऊंचाहै । उसके संग पूर्वकी ओर काकान्नि पर्वतका मेल है । दोनोंके बीचमें जो पहाडी मार्गहै वह छः हजार फुट ऊंचेपरहै । इन दोनों पर्वतोंके उत्तरमें नवकोट उपत्यका और पश्चिममें कालपू नदीकी उपत्यकाहै ।

कुमार, भीरवन्दी, काकान्नि, शिवपुरी, मणिचूड और महादेवपोखरा यह छः पर्वत त्रिशूल गंगासे इन्द्राणीके किनारेतक लम्बे और जिवाजिविया (गोसाईं थानके दक्षिणकी) पर्वतमालाके साथ समान अन्तरसे खडेहैं । चन्द्रागिरि, फूलचोया, मणिचूड, शिवपुरी, नागार्जुन पर्वतका उत्तरांश यह सबही गहरे वनसे ढकेहुए और चीते, वाघ, भालू तथा वनैले शूकरोंके रहनेका मानों घरहीहैं ।

नैपाल उपत्यकाकी पहिली दशा ।

हिन्दुओंके सिद्धान्तसे यह उपत्यका बहुतकाल पहिले एक डिम्बाकार वडे गहरे सरोवरके रूपमें थी । यह सम्पूर्ण पर्वत उस सरोवरके किनारेसेही उठेथे ।

बौद्धलोग कहतेहैं कि, मंजुश्री बोधिसत्वनेही उस बडे सरोवरका जल निकालकर उसकी सुन्दर रहने योग्य उपत्यकाको बनायाथा उसने अपने खड्गसे कोटवार नामक एक पहाडका शिखर काटा और उसमार्गसे सब जल वाहर निकालदिया । फूलचोया और चम्पादेवी पर्वतके बीच जो खाई छोडकर वाघमती वहतीहै, सुनते

है कि, वह खाई मंजुश्रीने ऐसीही वनाई थी। मंजुश्रीका उपाख्यान छोडदेनेपरभी यह उपत्यका एक समय जलमयथी, और प्राकृतिक परिवर्तनसे वहुतकाल पीछे उपत्यका वनगई, यह वात देखनेवाले सहजमेंही समझ सकतेहैं। यह उपत्यका डिम्वाकारहै।

उपत्यकाकी नदी।

वाघमती-शिवपुरी पर्वतके ऊपर उत्तरकी ओर वाघद्वार नामक स्थानमें एक झरनेसे निकलकर शिवपुरी और मणिचूण्डके वीचमें होती हुई घूम फिरकर शिवपुरी पर्वतके ऊपर गोकर्ण नामक तीर्थस्थानके पास शियालनदी वा शिवानदीके संग मिलगई है। वहांसे दक्षिणकी ओर प्राचीन वौद्धक्षेत्र केशचैत्यके निकट पहुंचीहै। फिर गंगेश्वरी खाईके वीचसे होती हुई पशुपतिनाथ क्षेत्रको प्रायः तीनों ओरसे घेर-कर दक्षिणाभिमुख राजधानी काठमाण्डूके पास आ निकली है। काठमाण्डू इसके दहिने किनारे और पाटन नगर वायें किनारेपर है। पीछे दक्षिणकी ओर एक खाईमें वहती हुई चव्वर नामक पुराने नगरके पाससे होकर चन्द्रगिरि पर्वतकी तलेटीमें फलगईहै, वहांसे चम्पादेवी और महाभारत शिखरके वीचमें घूमतीहुई फिर फिङ्गा-पर्वतके नीचे खाई देकर नेपाल उपत्यकाको छोड गई है। यहांके वौद्धलोग कहतेहैं कि गोकर्णके पासकी खाई गजेश्वरी खाई, चव्वरके पासकी खाई और फिर फिङ्गपर्वतके नीचेकी खाई मंजुश्री वोधिसत्वकी तलवारकी चोटसे हुई हैं। शिवमार्गी नेवार और दूसरे हिन्दूलोग इसकी उत्पात्ति विष्णुजीसे कहतेहैं. विष्णुमती, धोवीकोला या रुद्रमती मनोहरा और हनुमानमती यह चार वाघमतीकी प्रधान उपनदी हैं। विष्णुमतीका दूसरानाम कृष्णवतीहै, यह शिवपुरी पर्वतके दक्षिणांशमें वडे नीलकण्ठ सरोवरसे उत्पन्न होकर विष्णुनाथ नामक गांवके पास पर्वतको छोड उपत्यकामें घुसीहै। यहांसे दक्षिणकी ओर नागार्जुन पर्वतकी जडमें घूमकर वालाजी और स्वयंभूनाथ तीर्थोंको वांई ओर छोडती हुई काठमाण्डू नगरके पश्चिमांशमें पहुंचतीहै। पीछे नगरके कुछ नीचे दक्षिणमें वाघमतीके साथ मिलीहै। दोनों नदियोंके सङ्गमपर वहुतसे मन्दिर वनेहैं और एक वडा घाटभीहै। जहां शवदाह करनेस मृतकको पुण्यकी प्राप्ति होती है, इस कारण सवलोग वहांही शवदाह करतेहैं। वाघमती और विष्णुमतीके उत्पत्ति विषयमें एक उपाख्यान प्रसिद्धहै। वौद्धलोग कहतेहैं कि, ककुच्छन्द नामक चौथे वुद्ध जव तीर्थदर्शनके लिये नैपालमें आकर शिवपुरीपर्वतपर पहुंचे, तव उनके कई अनुचरोंने इस स्थानकी शोभा देखकर वौद्ध होना स्वीकार किया और वहाँ वहुत कालतक रहनेकी इच्छा प्रगट की उनके अभिषेकके लिये ककुच्छन्दको जल कहीं

भी नहीं मिला। तब देवशक्तिकी आराधना करके उन्होंने एक पर्वतमें अँगूठा गाडा। वहां देवबलसे एक धार निकलनेलगी। वह धाराही वारिमती वा वाघमतीनामसे विख्यातहै। फिर उस जलमें अभिषेक हुआ। नवीन बौद्धोंके मुण्डनके बाल शिला बनगये। यही वर्तमान बौद्धतीर्थ केशचैत्यहै। इन केशोंका कुछ अंश हवासे उडकर दूसरी जगह जा पडा, वहांसे ऐसीही एक और धारा निकलनेलगी, वही केशवती या विष्णुमती नदी है। सुवर्णमती और बदरीनामक विष्णुमतीकी दो उपनदीभी हैं धोविकोला या रुद्रमती शिवपुरी पर्वतसे उत्पन्न होकर काठमाण्डूके डेढकोस पूर्वमें वाघमतीसे मिलगई हैं। इसके किनारेपर हरिगाओं और देवपाटनहै। मनोहरा या मनोमती मणिचूड पर्वतसे निकलकर पाटन नगरके सामने वाघमतीमें गिरी है।

हनुमानमती महादेवपोखरा पर्वतके एक सरोवरसे निकलकर भाटगांव नगरको दहिनी ओर छोड कंसावतीनदीको सङ्ग लेती हुई चाङ्ग नारायणके नीचे मनोहरमें जामिली है।

खेती।

नैपालकी खेती और उपज मौसमके ऊपर निर्भर है। इस राज्यकी भूमि समतल न होनेसे उलटीही वात दिखाई देती है। नैपालकी पहाडी उपत्यकाओंमें मधुरफल और भोजन योग्य शाक सबजी बहुतायतसे होती है। जल वायुके गुणानुसार किसी २ पहाडीस्थानमें वडे २ वांस आर वेंत देखे जाते हैं, किन्तु अधिक स्थानोंमें केवल सुन्दरी और देवदारके वृक्षही वहुतायतसे पायेजाते हैं। इसके अतिरिक्त कहीं २ पिश्ते अखरोट, तूतफल, रसभरी आदि मीठे फलोंके वृक्षभी पाये जाते हैं। छोटी २ पहाडियोंपर जहां गर्मी अधिक होती है अनार, गन्ना तथा दूसरी भूमिमें जौ गेहूं कंगनी आदि नाज वहुत होते हैं। जाडेमें नारंगी होती हैं। पर्वतादिकी ऊंची भूमिके मध्य वर्सातमें अधिक वृष्टि होनेसे कभी २ फलादि होकरभी नष्ट होजाते हैं।

दूसरी ओर इस पानीसे भूमि तर होजानेके कारण गर्मियोंमें धान, मक्का आदिकी खेतीको वहुत लाभ पहुंचता है यहांकी वहुतसी भूमिमें ऋतुभेदसे वर्षमें तीनवार खेती होती है। जाडम जहां गेहूं, जौ सरसों आदिकी खेती होतीहै, वसन्तके आरंभमें उसही भूमिको जोतकर मूली, लहसुन और आलू आदि वोये जातेहैं, तथा वरसातके समय उन खेतोंमें धान, मक्का और मिर्चें वोईजाती हैं। पहाडके ऊपरकी ढालू समतल भूमिमें मटर, चना, गेहूं और जौ आदि उत्पन्न होते हैं।

जहाँ सरसों, मजीठ, गन्ना और इलायची बहुत होती है, वहां अधिक जल चाहिये ऐसा न होनेसे फसल अच्छी नहीं होतीं।

सबही नैपाली चावल खाते हैं। अतएव राज्यके सब स्थानोंमें धानकी खेती होती है। विशेषकरके नीची और जल सींची हुई भूमिमें ही धान जमते हैं। इसके सिवाय नैपालमें औरभी कई प्रकारके चावल होते हैं, उनको नैपालिलोग "घिया" कहते हैं। घियाके पकनेमें गर्मी या वर्सातकी आवश्यकता नहीं होती। पहाडकी ऊंची और सूखी भूमिमें यह अन्न, जलके विना सहायताके उपजता और पकता है। पहाडके ऊपरकी भूमिको एकसा करनेके लिये हल या और किसी यंत्रकी आवश्यकता नहीं होती। नैपालीलोग अपने हाथसेही भूमिको अन्न बोनेलायक बना लेते है। नैपालके तराई नामक स्थानमें चावल, अफीम, सफेद सरसों, अलसी, तमाकू और ऊखकी अधिक खेती होती है। इस स्थानके चारों ओर छोटे २ सोत बहते हैं इस कारण कभीभी जलका अभाव नहीं होता।

तराईके वन विभागमें शाल, सफेद शाल, पियाशाल, खर, सीसम, आवनूस, कालिकसेट, मुलता, सोनी और "भञ्ज" (इनके अच्छे २ पहियें और धुरे बनते हैं) रुई, डूमर, गन्द उत्पन्न करनेवाले वृक्ष सब स्थानोंमें ही पायेजाते हैं। पर्वतके ऊपरवाले वनमें सुन्दरी, तिलपत्र, मन्दार, पहाडीकठैल, कञ्जरु, तालीसपत्र, मण्डल, सिंगाडी, अखरोट, चम्पा, सिरस, देवदारु और झाऊ आदि वृक्षही प्रधान हैं। इनके सिवाय खाने योग्य खूबानी सफरी और चाह तथा शरीरादिको उजला करनेके लिये अनेक प्रकारके सुगंधवाले पुष्पवृक्षभी देखे जाते हैं।

भूमिसे अनेक प्रकारके धान्य उत्पन्न होनेपरभी यहांकी मट्टीमें भांति भांतिके कन्द और जडी बूटियें जमती हैं। चर्परे स्वादवाले और सुगंधवाले वृक्षोंसे भांति २ के रंग तयार होते हैं। नैपाली लोग उन रंगोंका बडा आदर करते हैं।

'जोया' वृक्षके पत्तके रससे चरस बनता है। जिसके व्यवहारसे नशा हो जाता है। यही नैपाली चरसके नामसे विख्यात है। नेवारी लोग उक्त वृक्षके सूखे पत्ते कूटकर एक प्रकारका सूत निकालते हैं और उसको बुनकर एक प्रकारका सूती कपडा तयार करते हैं।

भूमितत्त्व।

नैपालके पहाडी अंशसे जो मूल्यवान पत्थर और मैली धातु पाई गई हैं, उनसे अनुमान होता है कि, नैपालके किसी २ अंशमें छिपी हुई खाने हैं। मट्टीके कुछ

नीचेसे तांवा, लोहा आदि पाया गया है। तांवा उत्तम होनेपरभी लोहा दूसरे स्थानोंसे गिरता हुआ है। गन्धक अधिक पाई जाती है, इसही कारण दूसरे स्थानोंको भेज दी जाती हैं। नैपालमें जो अनेक प्रकारके मिले हुए और मैले २ खानिज पदार्थ पाये जाते हैं विशेष छान वीन करनेसे जाना जाता है कि, इन मिश्रित पदार्थोंमें वहुतसी मूल्यवान धातुओंका अंश है। इसके सिवाय यहां कई प्रकारक पत्थर भी पाये जाते हैं उनमेंसे मार्वेल, सिलेट, चूना और लाल पीले पत्थरही वर्णन योग्य हैं।

गोर्खा स्थानके पास एक प्रकारका साफ क्रस्तल (Crystal) पत्थर पाया जाता है, अच्छी तरह काटा जाय तो हीरेकीसी चमक देता है। यहांकी मिट्टी ऐसी अच्छी है कि, कुछ काल पीछे वह सिमेंटके समान कठिन होजाती है।

वाणिज्य।

नैपाल राज्यके वाणिज्य विषयमें कुछ वात कहनेके पहिले देखना चाहिये कि, किस २ राज्यके साथ नैपालियोंका व्यौपार होता है, हिमालय पहाडके दूसरे पार वसा हुआ तिब्बत राज्य, और दक्षिणमें भारत साम्राज्य,; इन दोनोंके साथ उनका वहुत घना सम्बंध देखा जाता है। तिब्वतमें जानेके लिये यद्यपि वहुतसे पहाडी मार्ग हैं, किन्तु सवही वरफसे ढके हुए हैं केवल काठमाण्डू नगरको उत्तर पूर्वमें छोड कर जो मार्ग कोसीनदीकी उपनदीके किनारे सीमाके अन्तमें नीलम या कुट्टी नामक अड्डेतक गयाहै, वह (१४०००) फूट ऊंचा है और दूसरा जो मार्ग (९०००) फुट ऊंचा। गण्डक नदीके पूर्वाभिमुखी सोतेमें होकर किरङ्ग ग्रामके पाससे ताडम् ग्राम होता हुआ सानू-पूनदीके किनारेतक आयाहै, इन दो मार्गोंसेही नेवारी लोग तिब्वतमें आते जाते हैं। व्यौपारकी चीजें लेजानेके लिये सवारी आदि नहींहै, केवल वकरेकी पीठपर वोझा लाद कर इन सव मार्गोंमें जाते हैं। घोडा या छकडा लेकर ऐसे दुर्गम मार्गमें जानेका उपाय नहीं है। तिब्वतसे पसमी साल और एक प्रकारका पसमसे वना हुआ मोटा कपडा, नमक, सुहागा, कस्तूरी, चौंर, हरिताल, पारा, सुवर्ण रज, सुर्म्मा, मजीठ, चरस, अनेक प्रकारकी औषधि। और सूखे फलादि नैपालमें और आस पासके अंग्रेजी राज्योंमें लाये जाते हैं। इधर नैपालसे तांवा, पीतल, लोहा, कांसी आदि, विलायती कपडा, लोहेके पदार्थ, भारत वर्षके सूती कपडे, सुगंधितमसाला, तमाखू, सुपारी. पान, अनेक धातु और कीमती पत्थरभी तिब्वतमें भेजे जाते हैं।

नेपाली लोग हिन्दोस्थानसे जो वाणिज्य व्यौपार करते हैं वह वहुधा नैपालकी सीमावाले ७०० मीलके भीतरी वाजारोंसे आता है। नैपालसे भारतके स्थान २ में जो सौदागरी माल भेजा जाता है, उसके ऊपर नैपाल राज्यने कर लगादिया है, इसी प्रकार भारतसे नैपालमें जो माल भेजा जाता है उसपरभी कर लिया जाता है। करसे मिला हुआ रुपया खजानेमें जमा होता है। राजाकी आज्ञासे नैपाली लोग जो चीजें अपने शौक और भोग विलासके लिये नैपालमें लाते हैं, उनके ऊपर अधिक कर लगता है, किन्तु आवश्यकी चीजोंके ऊपर थोडा कर भी लिया जाताहै।

इस करके वसूल करनेके लिये प्रत्येक वाजार और भिन्न २ देशमें माल लेजानेके लिये मार्गमें एक जांच-घर है। कभी २ जांच घरोंका काम ठेकेपर नीलाम कर-दिया जाता है। तमाखू, इलायची, नमक, पैसा, हाथीदांत और चकोर, काष्ठा-दिकका व्यौपार केवल नैपालकी, सरकारही करती है, इस काममें राजकुटुम्बको या राजाका कृपापात्र कोई आदमी नियत किया जाता है। इनको छोडकर सब चीजोंमें ही दूसरे लोगोंका अधिकार है, किन्तु सबकोहीं करदेना पडता है. यह वस्तुके वोझ या संख्याके अनुसार लिया जाता है।

काठमाण्डूसे जिस मार्गद्वारा नैपाली वस्तु भारतवर्षमें लाई जाती है वह सिगौ-लीसे राजधानी काठमाण्डूकी ओर पहिले नैपालकी सीमाके अन्तमें एक सौलगांवमें होता हुआ, हथौडा, भीमफडी और थान-कोट नगरमें होकर राजधानीमें पहुँचा है। पहिले इस मार्गसे चम्पारन जिलेमें होते हुए पाटन आतेथे, किन्तु सिगौली तक रेलकी सडक होनेसे सौदागरोंको सुभीता होगया है,। इस सरलताके होनेपर भी यहां दुर्गम मार्गमें सौदागरी माल लेजानेमें वडा कष्ट होताहै। कहीं बैल, कहीं घोडा और कहीं गाडी आदिकी सहायतासे तथा स्थान विशेषमें कुलियोंकी सहा-यतासेही माल लेजाते हैं। सिगौलीसे काठ-माण्डूतक जो मार्ग गया है, वह ९२ मील है। स्थानीय नदी या सोतादिमें केवल साल और दूसरे काठ तैराकर लाये जाते हैं।

चावल और दूसरा अन्न, घी, टट्टू, घोडा, गाय, मेंढा शिकारके लिये शिकरा, मना आदि पक्षी, शाल आदि लकडी, अफीम, कस्तूरी, चिरायता, सुहागा, मजीठ तारपीनका तेल, खैर, पाट, चमडा, ऊन, सोंठ, इलायची, लालमिरच, हल्दी और चौंरके लिये चामरी गायकी पूंछादिक वहुतसी वस्तु भारतवर्षके प्रधान २ नगरोंमें आती हैं और यहांसे रुई, सूत, देशी और विलायती सूती कपडा, ऊनी कपडा,

शाल, तौलिया, फलालेन, रेशम, कीमखाव, जरी, चीनी-मिरच मसाला, नील, तमाखू, सुपारी, सिंदूर, तेल, लाख, नमक, चावल, मेंढा वकरा, भेंड, तांवा, तांवेकी चादरें, पीतलके गहने, माला आरसी, शिकारके लिये बन्दूक, वारूद और दार्जिलिंग तथा कुमायूंसे " चाह " इत्यादि वस्तु नैपालमें भेजी जाती हैं। जैसा मार्ग चम्पारनमें होकर पाटन जानेको है। वैसेही दरभंगा, मिरजापुर, पुरनिया और मीरगंज शहरोंमें नैपालसे सौदागरी माल लेजानेके लियेभी दो मार्ग हैं।

सौदागरी माल।

नैपालकी सव जातियोंमें नेवारी लोग अधिक परिश्रमी हैं। नेवारियोंमें स्त्री पुरुष दोनोंही भलीभांतिसे परिश्रम करसकते हैं। नेवारी स्त्रियां और. पहाडी मगर जातिके पुरुष, कपासका कपडा वनानेमें वडे चतुर हैं। अपने पहरनेके लिये एक प्रकारका मोटा कपडा बुनते हैं। और दूसरे देशोंमें चालान करनेके लिये एक और प्रकारका कपडा बुनते हैं। साधारण लोग अपना शरीर ढकनेके लिये एक प्रकारके पसमका वनाहुवा कम्वल व्यवहार करते हैं, इन कम्वलोंको भोटिये लोग वनाते हैं। नैपालके राजपुरुष और धनी लोग जो कपडा पहनते हैं; वह चीन और विलायती आदि देशोंसे आता है। अपने देशके वने हुए मोटे कपडेपर उनकी विशेष रुचि नहीं देखी जाती।

नेवारी लोग लोहा, तांवा, पीतल और कांसीकी वहुत चीजें वनाते हैं। पाटन आर भाट-गांव नगरमें इन धातुओंका विशेष कारोवार है। यहां अच्छे २ घंटे भी वनते हैं।

वहुत जगहपर वढईका काम भी हो सकता है। लकडी आदि काटनेके लिये यह लोग आरीको काममें नहीं लाते, वांस और दरांतसेही यह काम पूरा करते हैं। एक प्रकारके वृक्षकी छालसे कागज तइयार होता है। इस वृक्षका नाम जेकू वा (महादेवका फूल) (Daphue) है पहिले वृक्षकी, छालको किसी वर्तनमें रखकर गरम जलसे उवालते हैं। पकजानेपर उसको खरलमें डालकर कूटते हैं। जवतक यह क्वाथ मैदाके समान नहीं होता, तवतक कूटतेही रहते हैं, फिर पानीमें घोलकर छानते हैं। छानस फैंककर जलको सुखाते हैं, फिर उसको एक काठके ऊपर डालकर सुखालेते हैं, फिर घोटकर चिकना करते हैं। काली नदीके किनारे वाले भोटिये लोग भी ऐसा कागज तैयार करते हैं। काठमाण्डूमें तीन सेर कागज

सत्तरह आनेको बिकता है। बांधनेके लिये यह कागज अच्छे होते हैं, क्योंकि बहुत मजबूत बनाये जाते हैं।

नैपाली लोग चावल और दूसरें अन्नसे सुरासार और गेहूं, महुआ तथा चावलसे शराब तैयार करके बेचते हैं। वह इस सुराको, रुकसी कहते हैं। यह मीठी होती है, और दूसरी सुराओंके समान नशा करनेकी शक्ति रखती है।

वर्त्तमान मुद्रा।

वर्त्तमान समयमें जो मुद्रा नैपालके बीच चलती है और समय २ पर जो सुवर्ण चांदी और तांबेकी मुद्रा चलती थी उन मुद्राओंके भारतवर्षमें कितने दाम हैं, सो नीचे लिखे जाते हैं;--

पहिला सिक्का। (सुवर्णका)	दाम।
अशरफी...	...२०) रुपये
पाटले...	...८।-)। आने।
सूका	...४=) ८पाई।
सूकी	...२-) ४ पाई।
आना	...१) ८ पाई।
दाम	...।) २ पाई।

चांदीका सिक्का।

रूपी	...।।।) ४ पाई।
मोहर	...६) ८ पाई।
सूका	...≡) ४ पाई।
सूकी	...-) ८ पाई।
आना	... ६ पाई।
दाम	... ३ पाई।

तांबेका सिक्का।

पैसा	... २ पाई।
दाम	... आधी पाई।

नैपालमें जो सिक्का अब चलता है उसका नाम मोहर है अंग्रेजी राज्यमें उसका दाम ।=) आठ पाई है। किन्तु ऐसा सिक्का अब विशेष नहीं चलता, केवल गणितके लिये आवश्यकता होती है।

आजकल नेपालमें जिस प्रकारका सिक्का व्यवहार होताहै वह इस प्रकार विभक्त है।

४ दामका ... ... १ पयसा।
४ पयसोंका ... ... १ आना।
१६ आनोंका ... ... १ मोहरी रूपी।

इसके सिवाय नेपालमें और भी तीन प्रकारका तांबेका सिक्का चलताहै। अंग्रेजोंके वहरायच नगरसे चम्पारनतकके स्थानोंमें जो ताम्बेकी मुद्रा देखी जाती है, उसको हमारे देशमें ढिपले या मन्सूरी पयसा कहतेहैं, किन्तु सर्व-साधारणमें वह भोटिया वा गोरखपुरी पयसेके नामसे विख्यातहै। ऐसे ७५ पयसोंका मूल्य हमारे यहांके एक रुपयेके समान है, किन्तु नेपालियोंको इस पयसेका ऐसा अभ्यास है कि वह ऐसे आठ पयसोंके वदलेमें अंग्रेजी राज्यके नौ पयसोंसे कम नहीं लेते। यह पक्के पयसे पालपा जिलेके अन्तर्गत तानसेन गांवकी टकसालमें वनाये जाते हैं।

इस राज्यके पूर्व और उत्तर पूर्वांशमें एक प्रकारका काला सिक्का चलताहै, जो लोहिया पयसेके नामसे विख्यात है, इसमें लोहा मिलाहुआ होनेसे दाम कम हैं। ऐसे १०७ पयसे और हमारे यहांका एक रुपया वरावर है। लोहिया पयसा वनानेके लिये पूर्वकी ओर पहाडियोंमें वहुतसी टकसालें हैं, उनमेंसे खिका-मेकुछा ग्रामकी टकसाल विख्यात है। अव भी चम्पारन और पुरनियांमें होकर यह पयसे उत्तर विहारमें आते हैं। सन् १८६५ ईसवीसे काठमाण्डूमें जो नई पातला नामक ताम्रमुद्रा चली सो गोलाकार है। मसीनकी सहायतासे वनती है और उसके ऊपर राजाका नाम भी छपा रहता है। इस नये सिक्केके चलनेसे राजधानीमें लोहिया सिक्केका चलन वन्द होगया। इसके वनानेको काठमाण्डू नगरमें एक टकसाल है।

पहिले नैपालराज्यमें जितने चांदीके सिक्के चलतेथे वह वर्त्तमान मुद्रासे वडे थे। इस राज्यके दक्खनवाले सव स्थानोंमेंही नैपाली मोहरके वदले अंग्रेजी रुपया चलताहै और अंगरेजी नोटकाभी कुछ आदर होनेलगा है।

आजतक जो चांदीका सिक्का नैपालमें चलताहै, उसकी एक ओर राजा सुरेन्द्र विक्रमशाह देव और त्रिशूल, तथा दूसरी ओर गोरखनाथ वीचमें श्रीभवानी और तिपात खुदा हुवाहै। वेण्डल साहव लिखते हैं कि, नैपालमें जो सातवीं सदीका सिक्का मिलाहै, उससे स्थानीय प्राचीन इतिहासकी अनेक वातें जानी जाती हैं। * किन्तु

* Zeitschrift der deutschen morgenlan dischen Gesellschaft, 1882, P. 651.

सोलहवीं सदीके पिछले सिक्कोंसेही ऐतिहासिक समय निरूपण और राजगणके निश्चय करनेमें विशेष सहायता मिली है। +

तोल और वजन।

इस राज्यमें सोना, चांदी, और दूसरी धातु, सूखे और गीले पदार्थ वजन और उसकी तोल निश्चय करनेके लिये जो वाट और नाप प्रचलित हैं वह इस प्रकार हैं--

सोना		चांदी	
१० रत्ती या लालके-	१ मासा	८ रत्ती या लालका-	१ मासा।
१० मासेका-	१ तोला	१२ मासेका-	१ तोला।

तांवा और पीतलआदिक धातुओंके नाम।

४॥ तोलेका	१ कुणवा।
४ कुणवाका	१ टुकणी वा पोया।
४ टुकणीका	१ सेर

३ सेरकी--धारिणी--का वजन अंग्रेजी एवर्डुपएस ५ पौंड होताहै।

सूखी वस्तुकी तोल।		तरल पदार्थोंका नाप।	
२ मनाका	१ कुडवा।	४ दियाकी	१ चौथाई।
४ कुडवाका	१ पाथी	२ चौथाईकी	१ आधटुकणी।
२ पाथीकी	१ मूडी	२ आधटुकणीकी	१ टुकणी।
१ पाथी अंग्रेजी एवर्डुपएस ८ पौण्डकी बरावरहै।		४ टुकणीका	१ कुडवा-१ सेर।
		४ कुडवेकी	१ पाथी।

समय निरूपण।

वर्त्तमानकालमें धनवान नैपालीमात्रही योरोपसे मंगाईहुई घडीकी सहायतासे समयको निश्चय करते हैं। पूर्वकालसे भारतवासियोंके समान उनमें समय निरूपणके लिये जो परिमाण नियत था वह नीचे लिखाजाताहै।

६० विपलका	१ पल।
६ पलकी	१ घडी--२४ मिनट।
६० घडीका	१ दिन या २४ घंटे।

+ Bendall's Catalogue of Buddhist manuscripts Cambrige Intro XI.

प्रातःकाल जब हाथके रोम अच्छीतरह गिने जासकते हैं, ठीक उसही समयसे नैपालियोंके दिनका आरंभ होताहै ।

प्राचीन कालमें नैपालीलोग एक तांबेकी हांडीमें छेद करके जलसे भरीहुई नांदके ऊपर छोड देतेये, हांडीमें ऐसा छेद करतेथे कि एक घडीमें वह जलके भीतर डूबजातीथी । हमारे देशमें भी कटोरेमें छेद करके पानीमें छोडदेते हैं । इस घडीमें कभीभी अन्तर नहीं पडता ।

नैपालियोंके यहां दिन और रात चार भागोंमें विभक्त है । १ प्रभातसे पूर्वार्द्ध-तक, इसके पीछे फिर एकसे आरंभ करके सन्ध्यातक दूसरा भाग रहताहै । संध्यासे आधी राततक तीसरा भाग और आधीरातसे प्रभाततक चौथा भाग होताहै। किन्तु हमारे देशमें दिनरात दो भागोंमें विभक्त है; अर्थात् रातके बारह बजेसे दिनके १२ बजेतक और फिर एकसे लेकर बारह बजेतक ।

जातितत्त्व ।

पर्वत श्रेणीसे इस देशके छिन्न भिन्न होनेपर भी राज्यमें बहुतसी भावर बनगईहैं। इस ऊंची भूमिमें अनेक प्रकारकी पहाडी जाति रहती हैं । वे लोग यहांके पुराने निवासी गिनेजाते हैं। काली नदीके पूर्वकी ऊंची भूमिमें जो कई एक विशेष जाति रहती हैं, उनके नाम यह हैं (१) **मगर** जाति–भेरी और मत्स्येन्द्री वा मत्स्यांग्री नदियोंके बीचकी पहाडियोंमें इनके घर हैं । यह बडे साहसी होते हैं और फौजमें नौकरीकरके जीविका निर्वाह करतेहैं. (२) **गुरुङ्ग** जाति–उक्त मगर जातिकी वस्तीसे हिमालयके पालेसे घिरे हुए स्थानतक समस्त पर्वतखण्डोंमें इनका निवास है (३) **नेवार** जाति–काठमाण्डूकी भावरके 'ने' नामक स्थानके रहनेवाले प्राचीन रहवासी हैं नैपालके खेती आदि सब कामही यह लोग करते है, तो भी धनहीन हैं। इस उप-त्यका भूमिके पूर्वकी ओर पहाडी भूमिमें (४) **लिम्बू** 'वा' याक–थुम्वा और (५) **किराती** वारवोम्वा जातिका निवास है.(६) **लेपूचा**–जाति–सिकम और दाराजिलिङ्ग विभागके पश्चिममें और नैपालकी पूर्व सीमाके अंतमें रहती हैं. (७)–**भोटिया** जाति लिम्बू किराती और लेपूचा जातिकी वस्तीके उत्तरवाले पहाडोंकी भावरमें और तिब्बत सीमातकके स्थानोंमें इस जातिका निवास देखाजाताहै । भोटि-योंमें 'लो' नामक स्थानके रहनेवाले लोकृण और उनके समीपकी जाति दुकृपा नामसे विख्यात है। हिमालयकी दूसरी पार तिब्बतके पासवाले देशोंमें भोटिया जातिकी

वस्तीके मध्य रांवो, सियेना, काट भोटिया, पल्लू, सेन, था-सेन, सर्प इत्यादि पहाडी जातियोंका निवास है। इनके अतिरिक्त नीची उपत्यकाओंमें और नैपालके तराई स्थानमें (८) **कुशवार,** (९) **देनवार** और (१०) **हायु वोटिया** (यह भोटियोंसे अलग हैं) दूरे या दहरी, ब्राम्, वोकमा, चेपां, कुसुन्दा, थारू आदि जातियोंका निवास है। तैसेही (११) **सूनवार** और (१२) **मूर्म्मि** या तमर नामक दो जातियां अलग हैं।

काली या सरदा नदीके पश्चिमांशमें कुमायूं स्थान है, ईसवीकी वारहवीं शताब्दीमें राजपूतानेसे आकर गोर्खा जाति यहां वसी. इस जातिके ब्राह्मणोंमें पांडे उपाध्याय, और क्षत्रियोंमें खुश और थापा देखे जातेहैं। इस समय नैपालकी सव जातियोंके ऊपर इनकाही पूर्ण अधिकार है।

अंग्रेजोंका अनुमान है कि, नैपालमें वीस लाखके लगभग आदमी रहते हैं, किन्तु नैपाली राजदरवारकी सूचीसे मनुष्यसंख्या वावन लाखसे छप्पनलाखके वीचतक पाई जातीहै। नैपालमें कभी मनुष्यगणना नहीं हुई, इस कारण निश्चित जनसंख्याका निरूपण होना वडाही कठिन कार्य है।

पूर्वोक्त पुरानी जातियोंके होनेपरभी यहां वोधनाथ और स्वयंभूनाथके मन्दिरके पास भोटान आर तिव्वतीय जातियोंका निवास है। काठमाण्डूमें काश्मीरी और इराकी मुसलमान सौदागर रहतेहैं। इन लोगोंका प्राचीन कालसेही यहां निवास है। नैपालमें देव देवियोंके असंख्य मन्दिर होनेसे ब्राह्मण और पुरोहितोंकी संख्या भी वढगई है। इसके सिवाय प्रत्येक गृहस्थकोही एक पुरोहितकी आवश्यकताहै। यह पुरोहित उपाध्याय और गुरु अपने २ शिष्य और यजमानोंकी दीहुई दक्षिणा पूजाका धन और ब्रह्मोत्तर भूमिसे अपना भरण पोषण करतेहैं। इन लोगोंमें राजगुरुही सवसे अधिक मानाजाता है, उसकी वातको कोई भीं नहीं टाल सकता। नैपाल राज्यसे मिली हुई भूमिकी आमदनीके सिवाय वह देशवासियोंमें किसी जातिगत दोषकी मीमांसा करके भी वहुतसा रुपया कमाते हैं। नैपाली लोग ब्राह्मणोंमें विशेष भक्ति करते हैं। किसी प्रकारकी पीडा या विपत्ति आनेपर ब्राह्मण भोजनका नियमभी प्रचलित है।

ज्ञानवान् ब्राह्मणोंके सिवाय यहां ज्योतिषियोंका वास भी है। कोई २ पुरोहिताई करने परभी ज्योतिष विद्यासे निर्वाह करते हैं। होनहार वातके ऊपर नैपालियोंकी विशेष

श्रद्धा है, अधिक क्या लिखें एक बूंद औषधिका सेवन तथा युद्ध यात्रा इत्यादि कठिन कार्योंमें भी दैवज्ञसे विना मुहूर्त पूंछे हाथ नहीं डालते ।

वैद्यजाति–आयुर्वेदशास्त्रका विचार करनाही इन लोगोंका कामहै। नेपाली लोग चाहैं किसीदेशमें हों प्रत्येक कुटुम्वमें एक एक वैद्य नौकर रखतेहैं। यहां सर्वसाधारणके उपकारार्थ कोई औषधालय नहीं है । जो लोग क्लर्क या हिसाव लिखनेका काम करते हैं, वह नेवारजातिके होनेपरभी अव स्वतंत्र श्रेणीमें गिने जातेहैं ।

नैपालमें अव पहिलेके समान अराजकता नहीं है । सर जङ्गवहादुरके समयसे नैपालकी विशेष उन्नति हुई, इस कारण नैपाली लोग किसी बुरेकामका साहस नहीं करसकते । यहांका जो प्रधान विचारक होताहै, उसको दो सौ रुपये मासिक वेतन मिलताहै । अतएव विचारकको अपनी ओर करनेके लिये प्रतिवादी लोग घूंसदेकर वहुधा छूट जाते हैं । वंगालके साथ नैपालका वहुत दिनोंसे सम्वंध था, और उसी समयसे नैपालमें वंगालियोंका निवास आरंभ हुआ, यह सव वंगाली अपना आचार व्यवहार नैपालियोंसे वदललेनेके कारण नैपालियोंमेंही गिने जाने लगे । परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, यह लोग धर्मप्रचारके अभिप्रायसे अथवा और किसी कारणसे अपने देशसे निकाले जाकर वा सौदागरीआदिके वहानेसे इस पहाडी देशमें गयेथे ।

ऊपर लिखी जातियोंको छोडकर नैपालके कई स्थानोंमें औरभी कितनीही जाति रहती हैं । काठभोटिया जातिकी वस्तीके पास पहाडियोंमें थकसिया और ' पाकिया ' नामक दो जातियोंका निवासहै, वह परस्पर मित्रभावसे रहतीहैं । नैपालके कई स्थानोंमें पहियापधि, वायु, याकायु, खस, याखसिया, कोली, डोम, राइी, हरि, गढवाली, कुनेत, डोगरा, कक्क, वम्व, गक्कर, दर्दु, दूंधर (नैपाल पश्चिमांशमें) और दक्षिण भागमें नैपालके तराई स्थानके निकट और मध्य भागमें कोच, वोदो, धिमाला, कीचक, पल्ल, कुक्ष, दहि, या दरि, वोधपा और अवलिया जातिके लोग रहतेहैं । इन अवलिया जातिके लोगोंमें औरभी कई थोकहैं, जैसे· गरो, दोलखली, वतर या वोर, कुदि, हाजङ्ग, धनुक, मरहा, अमात, केवात, यामि आदि ।

जिन प्रधान २ जातियोंका वर्णन पहिले लिखागयाहै, उनके वीचमें जातिगत व्यापारसे जिस २ सम्प्रदायने विशेष विख्याति प्राप्त की है और उन व्यापारकार्योंसे जिस २ थोककी उत्पत्ति हुईहै, उसकी एक सूची दीजाती है ।

चुनारा (वढई) सार्कि (चर्मकार या चमार) कामि (लोहार) सुनार (सेकरा या स्वर्णकार) गाइन (गाने वजानेवाला) भानर (गायक) यह अपनी २ स्त्रियोंको

वेश्या वनातेहैं। दमाई (दरजी) आगरी (खोदनेवाला) कुमहल और किन्नरी (कुम्हार) पोप यह जल्लाद और चमारोंका काम करते हैं, कुल (चर्म्मकार) नाय (कसाई) चमाखल (भंगी मैलाफेंकनेवाला) डोङ्ग वा युगी (वाजेवाले) कौ (लोहार) धूसी (धातु शोधनकारी) अव (राज) वाली (किसान) नौ (नाई) कूमा (कुम्हार) सङ्गत (धोवी.) तङ्गि (दरी और कफन वनानेवाला) गथा (माली) सावो (जोक लगाकर रक्तनिकालनेवाला) छिप्पि (छीपी) सिकमि (वढई) दकमि (गृहआदि वनानेवाला या राजमिस्त्री) लोहोङ्ग कमि (पत्थर काटनेवालासंगतराश)

वस्त्र और गहने।

नैपालियोंमें गोरखा जातिही शरीरकी सजधजमें दूसरी जातियोंसे श्रेष्ठ वनी है। गर्मियोंमें सर्व साधारण लोग सादे वा नीले रंगके कपासी कपड़ेका पायजामा कुर्त्ता या पैरोंतक लटकता हुआ जामा जो चपकनकी भांति होताहै पहरतेहैं। सवकी कमरमें कई हाथ लम्वा कपड़ेका कमर वन्द रहताहै और उसमें कुकडी नामक टेढा छुरा लटकता रहताहै। शीतकालमें भी वह वैसीही पोशाक पहनतेहैं, किन्तु उसके भीतर रुई भरवा लेतेहैं, जो लोग धनीहैं उनकी व्यवस्था अलगहै। धनी लोग जामेके भीतर वकरेके लोम मढवालेते हैं। शिरकी शोभाके लिये टोपी ओढते हैं। जो काले कपडेकी वनी हुई गोल होती है, औरभी कई रंगके कपडे उसमें लगे रहते हैं, अधिक लोग उस प्रकारकी पगडी जरी और फीता लगाकर शिरके नाप अनुसार टोपीका भांति ओढते हैं।

नेवारी लोग कमरतक कपडा पहनते हैं, और गर्मी जाडेकी अधिकतामें मोटे सूती या ऊनी कपडेका जामा पहनतेहैं। इनमें जो लोग सौदागरीसे धनी वनगयेहैं, और जो लोग वहुतसे कामोंके लिये तिव्वतमें जातेहैं, वह चूडीदार पायजामा, चपकनकी तरह लम्वा जामा पहनते और सिरपर ऊनी टोपी ओढतेहैं।

हरिसिद्धि नामक स्थानमें जो नेवारी लोग रहते हैं वह स्त्रियोंके घाघरेके समान वा संन्यासियोंके समान पैरकी गांठतक नीचा जामा पहिनते हैं। माथेपर काले कपडेकी टोपी रहती हैं, जिसके भीतर भी रुई भरी जाती है और चारों ओर १ इञ्च अस्तर रहता है।

नैपालमें और जितनी जातियें हैं, उनका पहनावाभी वहुधा ऐसाही है जैसा कि, ऊपर लिखा गया है, तौभी स्थानविशेषमें कुछ अदल वदल होजाता है। समस्त

जातिकी स्त्रियें थोडा कपडा लेकर सामनेकी ओर घाघरेके समान चुनकर पहरती हैं। इनके पहरनेकी चाल अद्भुत भांतिकी है, सामनेकी ओर जो कपडेकी चुन्नट रहती है वह दोनों पैरोंको ढक कर भूमिमें लगती हैं, किन्तु पीछेका कपडा इतना छोटा होता है कि, वह भी परियोंसे नीचे नहीं गिरता, राजघरानेकी स्त्री और धनी लोगोंकी स्त्री तथा लडकियां घाघरेके समान जिस कपडेको चुनकर पहनती है, उसकी लम्बाई ६० से ८० गजतक होती है। यह कपडा बारीक होता है। धनी लोगोंकी स्त्रियें ऐसा कपडा पहन कर कभी बाहर नहीं जाती हैं। धनी या ऊंचे कुलकी स्त्रियें अपने वंशकी मर्य्यादा रखनेके लिये ऐसी पोशाक पहरती हैं और इसही वेशसे उनका विशेष आदर होता है। सब स्त्रियेंही जामा और साडी (शाल या जरीकी ओढनी) पहरती हैं। भारतवर्षके समतलक्षेत्र वासियोंके समान कभी सब शरीरमें और कभी कमरतक लपेटती हैं। शिर ढकनेके लिये कोई विशेष कपडा नहीं होता। नेवारी स्त्रियें अपने वाल माथेके ऊपर चुडाकारसे बांध लेती हैं, किन्तु दूसरी स्त्रियें वेणी गूंधकर सर्पके समान पीठ पर लटकाती हैं, और सिरे पर रेशम या सूतका डोरा बांधकर बालोंकी शोभाको बढाती हैं. नैपाली स्त्रियोंको गहने बहुत प्यारे होते हैं। वह यथाशक्ति अपने शरीरकी शोभाके लिये अनेक प्रकारके गहने पहरती हैं। धनीलोगोंकी स्त्री कन्या जैसे मणि मुक्ता जडे हुए सोने और चांदीके गहने पहनती हैं, वैसेही दूसरी पहाडी स्त्रियें अपनी २ सामर्थ्यके अनुसार गहने पहनती हैं। धनी लोगोंकी स्त्रियें शरीरकी शोभा बढानेके लिये माथे पर (सोने या पीतलका) जडाऊ फूल, गलेमें सोने मूंगेकी माला, हाथमें अंगूठी, कानमें बाले और करनफूल, नाकमें नथ आदि बहुतसे गहने पहरती हैं। असभ्य भोटिये लोग अपनी स्त्रियोंके लिये सुलेमानी पत्थर, मूंगा और दूसरे कीमती पत्थरोंकी माला, या भारी हार, चांदीका कठला और बाले आदि अनेक प्रकारके गहने बनवाते हैं।

नैपाली स्त्रियें सुगंधितफूलोंको बहुत पसंद करती हैं। वह शिरकी शोभा बढानेके लिये सदाही शिरमें फूल लगाती हैं। किसी त्यौहारके समय वह अपने बालोंको फूलोंसे खूबही सजाती हैं। व्यभिचारिणी स्त्रियेंभी फूलोंसे शृंगार बनाती हैं। जो स्त्री जहां फूलको पाती हैं हाथसे तोडलेती हैं।

राजपुरुषोंका पहरावा और प्रकारका है। वह शिरपर जरी और अनेक भांतिके पर, माणि, मुक्ता जडाहुआ ताज, शरीरमें घुटनोंतक लम्बा रेशमी जामा, पायजामा

और परमें जूता पहरते हैं। रूमाल और तलवारका व्यवहार सवही करते हैं। राना जङ्गवहादुरके शिरपर जो मुकुट रक्खा जाताथा उसका मूल्य एकलाख पचास हजार रुपयाथा। अच्छे वंशके लोग सब समय शिरपर टोपी, वनियानकी तरह घोटोंतक लम्बा जामा, कमरवंद, कुकडी, पायजामा और जूता, पहनते हैं. सैनिक-विभागके अध्यक्ष लोग अंग्रेजी सेनापतियोंके समान पोशाक धारण करते हैं।

खानपान।

नैपालराज्यमें ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्र आदि जातिविभाग होने परभी खान पान सम्बन्धमें विशेष कुछ पृथकृता नहीं देखी जाती। यहां जो लोग ब्राह्मण नामसे विख्यात हैं, उनका आचार व्यवहार और खान पान भारतके समतलवासी ब्राह्मणोंके समान है, किन्तु राज्यमें अधिक लोगोंकोही मांस प्यारा है। गोरखा लोग साधारणतः उत्तरके पहाडी स्थान और तराईसे लायेहुए वकरे तथा खस्सी मेंढे आदिका मांस खाते हैं। यह लोग शिकारके वडे शौकीन हैं। धनी लोग शिकार खेलना भली भांतिसे जानते हैं। वह सवही समय शिकार खेलनेको वाहर जाते हैं और इच्छानुसार हिरन, वनैले शूकर व सोणालू, गोखाण्ड, कुनाक, देरी, हरेल घुइन, चील आदि पहाडी पक्षियोंको मारकर उनका मांस खाते हैं।

वहुतसे लोग शूकरका वच्चा पालते हैं और इङ्गलेण्डकी रीतिके अनुसार उसको खिलापिलाकर वडा करते हैं। वचपनसे पाले जानेके कारण सुअरका वच्चा पालनेवालेसे अत्यन्त पोप मानता है अधिक क्या कहैं, कभी २ ऐसा देखागयाहै कि यह सुअरका वच्चा कुत्तेकी तरह अपने स्वामीके पीछे २ चलाजाताहै। नेवारी लोग भैंसा, भेड, वकरा, हंस और मोर, आदि पक्षियोंका मांस खाते व भारतवर्षके दुम्वेका मांस खानेकी विशेष इच्छा दिखाते हैं। यहांके मगर और गुरुङ्गजातिके लोग अपनेको हिन्दू वताते हैं। मगर जातिके लोग शूकरका मांस वडे प्रेमसे खाते हैं। किन्तु भैंसका मांस नहीं खाते इसके विपरीत गुरुंग लोग भैंसेकाभी मांस खाते हैं। किन्तु शूकरका मांस छूतेतक नहीं। लिम्बु, किराती और लेपूचा आदि वौद्ध धर्म्मावलम्बियोंकी भोजन प्रणाली नेवार जातिके लोगोंके समानहै।

साधारण धनी लोग यद्यपि मांस आदि भोजन और विलासकी दूसरी सामग्री भोगनेमें समर्थ हैं, किन्तु दारिद्र और नीची श्रेणीके लोग सदा मांस आदिका भोजन नहीं कर सकते। यह लोग मांसप्रिय होनेपरभी धनके अभावसे प्रतिदिन मांस नहीं खरीद सकते। इस कारण शाक सब्जीसेही अपना पेट भरलेते हैं। विशेपकर चावल

शाक आदिकी तरकारी कच्चा और रांधाहुआ लहसन या प्याज और मूली आदिकी तरकारी रांधकर खाते हैं। मूली पचानेके लिये वह एक प्रकारकी चटनी बनाके भोजनके संग खातेहैं। नैपाली लोग इसको (सिनकी) कहते हैं। यह चटनी अत्यन्त घृणित और दुर्गंधयुक्त होती है।

नेवारी लोग और दूसरी नीच जातियें मदिरा खूब पीती हैं। वह अपनी प्यास बुझानेके लिये चावल अथवा गेहूंसे एक प्रकारकी अधम शराव तैयार करते हैं। वही (रुक्सी) नामसे विख्यात है। यहां ऊंची श्रेणीके लोग मदिरा नहीं पीते। क्योंकि जो लोग जातिके नेता और जातिमें श्रेष्ठ हैं, उनके लिये शराब पीना बहुतही बुरा है। अच्छे कुलीन लोग मद्य पीनेके कारण जातिसे गिर जाते हैं। अचरजकी वात तौ यह है कि नैपाली मद्यके वदले अव वहां पर विलायती ब्राण्डी और शामपीन मद्य अधिकतासे व्यवहार होताहै।

नेवार लोग अपने शौकके लिये जो मद्य पीते हैं उसको अपने घरहीपर तैयार करते हैं। इसके लिये राजाको कुछ कर नहीं दिया जाता। किन्तु यदि कोई ऐसी वनी हुई रुक्सी शराव बाजारमें वेचै तौ उसको महसूल देना पडताहै। नेवार लोग सब समयही मद्य पीते हैं। पहाडी कोल जातिमें ' हांडियां ' का जैसा चलन प्रचलित है " रुक्सी " मद्यकाभी इनमें वैसाही प्रचार है।

चाहको सवही नैपाली पीते हैं। नीच लोगोंमें जो वहुत गरीव हैं और जिनके पास दाम नहीं हैं, वह लोग चाह नहीं पीते। चाह तिव्वतसे आती है। नैपाली लोग दो प्रकारसे चाह वनाते हैं, (१) मसालेके साथ पकाकरके जो चाह वनतीहै उसका स्वाद मद, चीनी, नींवूका रस और जायफल मिले हुए द्रव्यके समान है (२) घी और दूधके साथ भी वनती है। यह कुछ २ अंग्रेजी चकोलेट (Chakolate) के समान है। इसके सिवाय नैपाली लोग चाहके पिष्टकभी खातेहैं। जिनके वनानेकी रीति यहहै कि चाहके ताजे पत्तोंके साथ चर्व्वी चावलका पानी, अथवा खार युक्त पदार्थ मिलाकर कुछ देर गीला रखतेहैं। जव वह फूल जाताहै तव किसी लम्वे वर्त्तनमें भरके आगपर सुखा लेतेहैं, दूध आदिके साथ भी इसको खातेहैं। चाइना भाषामें इसका नाम ' तुङ्गकाउ ' है। अंग्रेजी ढंगसे वनीहुई चाहका विशेष आदर नहीं केवल ऊंची श्रेणीके नैपाली लोग जो कलकत्तेमें होगये हैं, इसके पक्षपातीहैं।

विवाहप्रथा।

नैपालियोंमें एक एक मनुष्यके कई २ विवाह होतेहैं। विवाह उनके लिये एक प्रकारका शोक है। जो धनवान् हैं वह कई स्त्रियें रखतेहैं। बहुतसी स्त्रियोंका होना नैपालियोंके लिये सन्मानका चिह्नहै। इसही कारणसे कोई २ धनी पचास २ और साठ २ स्त्रियें रखतेहैं। तथापि उनका मन तृप्त नहीं होता। बहु विवाहकी रीति जैसी नैपालमें प्रबलहै वैसेही विधवाविवाहका कठिन निषेध है। पूर्वकालमें यहां असंख्य पतिव्रता स्त्रियें स्वामीके साथ जलती थीं, स्वामीकी मृत्युसे स्त्रीका यह अपूर्व स्वार्थ त्यागना नैपालियोंके कठोर हृदयमें असाधारण धर्मज्योति प्रकाशित करताथा। यह सम्पूर्ण स्त्रियें भी अपने सती नामको चरितार्थ करके भारतमें धर्मका स्तंभ गाडकर सम्पूर्ण जगत्‌में अपनी चिरस्मरणीय कीर्त्ति फैलागई है। आज इतने दिन पीछे भी इस वातको सुनकर मनमें अपूर्वभक्तिका सञ्चार होताहै, और एक वार प्रेमाश्रु बहाकर उन स्त्रियोंको धन्य धन्य कहे बिना नहीं रहाजाता।

पुराने राजपुरुषोंकी नियमावली स्वच्छंदताके दोषोंसे दूषित होनेके कारण, तथा राजाके राज्यप्रबंधमें शिथिलता रहनेसे राज्यमें गडबड मची। राजपुरुषोंके परस्पर फूटसे गदर हुआ। उस समयही जङ्गबहादुरने राजाको सिंहासनसे उतारकर स्वयं राज्य लेलिया. राना जङ्गबहादुरने नैपालका राज्यभार अपने हाथमें लेकर भी जब देखा कि शत्रुओंकी बुरी दृष्टि अपने ऊपरहै, तब नैपालके ऊंचे ऊंचे बहुतसे कुलोंमें विवाह सम्बन्ध किया, बहुतसे विवाहोंका यही अभिप्राय था कि शत्रुलोग उनके विपक्षमें न रहैं। अभिप्रायके सिद्ध करनेको उन्होंने उस समय देशके बडे २ रईस और शक्तिशाली कुलोंमें अपने पुत्र पौत्र भ्राता इत्यादिको विवाह सूत्रसे बांधादिया। इसप्रकार अपनेको शत्रुओंसे निरापद समझकर सन् १८५१ ईसवीमें वह इंग्लेण्ड गये. वहां एक-वर्षतक रहकर अंग्रेजोंकी चालढाल देखी, पीछे सन् १८५२ ईसवीकी ८ फरवरीको नैपालमें लौटआये। आतेही नैपालका फौजदारी आईन बदलकर देशमें अच्छा प्रबंध बांधा। सतीदाह निवारणके विषयमें कई एक नये नियमोंका प्रचार किया। सतीदाहके विषयमें उनकी संशोधित नियमावली इस प्रकार है। पुत्रवती स्त्रियें इच्छा रह-तेभी जलनेके लिये नहीं जासकैंगी। (२) श्मशानमें जाकर जो स्त्री अपने स्वामीकी चिताको देखकर डरै, और साक्षात् कालरूप अग्निमें जलनेसे कांपै तो वह कभीभी सती नहीं होसकैगी। पहिले यह नियमथा कि, यदि कोई स्त्री एकवार स्वामीके संग जलनेको कहती, और श्मशानमें चिताका भयंकर दृश्य देखकर चौंकती, तौभी उसके

घरके लोग उसे वलात् चितामें डालदेतेथे। यदि स्त्री भागनेकी चेष्टा करती, तो लकडी मारकर उसका शिर फोडदेते और चितामें डालदेतेथे। जङ्गवहादुरकी कृपासे अवला स्त्रियें ऐसे भयंकर अत्याचारके पञ्जेसे वचगई। यद्यपि ब्राह्मण पुरोहितोंने इसके विरुद्ध वहुत कुछ कहा, तथापि उन्होंने किसीकी वात न मानकर अपने इन नियमोंको स्थापन करनेका दृढ संकल्प करलिया।

यदि गोरखोंको अपनी स्त्रीके चालचलनपर किसी प्रकारका संदेहहो व्यभिचारिणी होनेके खटकाहो तो वह स्त्रीको वडा कष्ट देतेहैं। कोई स्त्री यदि भ्रमसे कुमार्गमें चली जाय, तो पहिले उसको नियमसे घरमें रखकर उसके चरित्र सुधारनेकी चेष्टा करतेहैं, या उसको पाप कर्मके वदले वेंत इत्यादिका दण्ड देकर उसको फिर सुमार्गमें लानेकी चेष्टा करतेहैं। किन्तु जव देखतेहैं कि, उसकी कुचाल नहीं छूटी तो जन्मभर कैदमें रखते हैं। जो पुरुष जार वनकर दूसरेकी स्त्रीसे प्रेमकरै तथा उसका धर्मभ्रष्ट करना चाहे और स्त्रीका स्वामी यह वात जानले तो स्त्रीका पति अपनी स्त्रीके उपपतिको पाहिलीही वार देखनेसे कुकडी द्वारा मारदेता है। सर जङ्गवहादुरने देखा कि, ऐसे कुत्सित प्रेममें जातियताकी अवनति है, तथा ऐसे सतीत्व हरणमें देशकी वदनामी होती है, यह विचार कर उन्होंने उसके निवारण करनेको इस प्रकारका आईन प्रचार किया कि, यदि कोई पुरुष किसी दूसरेकी स्त्रीसे प्रेम करेगा तो उसको राजद्वारसे भारी दण्ड मिलेगा। दोषी आदमीको हवालातमें रखके उसका विचार आरंभ होता है, विचारमें दोष प्रमाणित होनेपर स्त्रीका स्वामी सवके सामने अपनी स्त्रीके जारको दो टुकडे कर देता हैं; किन्तु मृत्युके समय उसको प्राणरक्षा करनेका एक अवसर दिया जाता है, वह यह कि, दोषी और प्राण लेनेवाला दोनों कुछ अन्तरसे खडे किये जाते है, । फिर दोषी आदमीको भागजानेकी आज्ञा दीजाती है, यदि दोषी भागकर किसी प्रकारसे अपने प्राण वचाले, तो वचजाताहै। फिर उसका विचार नहीं होता। इसके अतिरिक्त जारकी प्राणरक्षाके और भी दो उपाय हैं, किन्तु नैपालीलोग ऐसी प्राणरक्षाको वुरा समझतेहैं। वह प्राणदेना प्रसन्नतासे स्वीकार करलेंगे, किन्तु अपनी पत्नीके उपपतिके पैरनीचे होकर नहीं निकलैंगे। नैपालीलोग ऐसे कुकर्म्म करके जाति छोडनेकी अपेक्षा प्राण देनाही अच्छा समझतेहैं और यदि स्त्री कहै कि, मेरा यह पहिला उपपति नहीं है। या सवसे पहिले मुझको यह कुमार्गमें नहीं लेगयाहै तो राजा स्त्रीका विश्वास करके विचारके लिये लायेहुए उपपतिको छोड देताहै। इस प्रकार दूसरेकी स्त्रीके संग प्रेम करके सैकडों कुलीन युवक

अकालमेंही कालके कराल गालमें गिरचुके हैं। भागनेकी आज्ञा रहनेपरभी उपपति भाग नहीं सकता, क्योंकि भागनेके समय कोई न कोई पकडही लेताहै। इस प्रकार व्यभिचार और जातिभङ्ग दोपके लिये पूर्वकालमें नेपालियोंको वडा भारी दण्ड भोगना पडताथा। इस दोपमें ऐसे दण्डका होना वास्तवमेंही अत्याचार था। अव यह सव आईन वदल गये हैं। नेवार, लिम्बू, किराती और भोटिया जातिके लोग यद्यपि वौद्धहैं, तथापि उनमें हिन्दू धर्मका अधिक प्रभाव पाया जाताहै। अतएव इन जातियोंमें कई २ विभाग होगये हैं। आचार व्यवहार परस्पर वहुधा एकसाही है। नेवार आदि दूसरी जातियोंकी अपेक्षा गोर्खालोगोंको विवाह वन्धनमें कुछ विशेपता देखी जाती है। भारतवासी हिन्दुओंके समान एकवार विवाह होनेपर दोनोंमेंसे एकही मृत्युके विना किसी प्रकारसे विवाह विच्छेद वा स्त्रीका त्याग नहीं होसकता। स्त्रीका त्याग या स्त्रीका किसी दूसरेके घरमें चलेजाना वहुत वुरा और जातीय गौरवका नष्ट करनवाला समझा जाताहै। नेवारलोग अपनी २ कन्याका वालकपनमें ही एक वेल (श्रीफल) के साथ विवाह करदेतेहैं। जव कन्या ऋतुमती होतीहै, तव उसके लिये एक अच्छा वर ढूंढकर लाते हैं, यदि इस नवीन दम्पतीमें प्रेमका संचार नहो और सदा कलहमें दिन कटैं तो वह कन्या अपने स्वामीके सिराने एक सुपारी रखकर वाहर चलीजातीहै इतनेसे ही स्वामी समझ जाताहै कि, मेरी नवीन स्त्री मुझे छोडकर दूसरी जगह चली गई, अव यह स्वामी त्यागकी रीति नियमवद्ध होगई है, अत इस समय इतनी सरलतासे कोई भी अपने पतिको छोडकर दूसरी जगह नहीं जासकती।

इनमें विधवा विवाहभी प्रचलितहै। एक प्रकारसे तो इन लोगोंमें कोई स्त्रीभी विधवा नहीं होती। इस जातिका विश्वासहै कि, एक पतिसे दूसरा पति करनेपर भी वालकपनमें वेलके संग विवाह करनेके कारण समिन्तका सिंदुर कभी नहीं छूटता।

इस जातिकी स्त्रियें व्यभिचारदोषसे दूषित होनेपर साधारण दण्ड पाती हैं। किन्तु जिस यारके सहवाससे उनका पातिव्रत धर्म नष्ट होताहै वह उपपति स्त्रीसे त्यागेहुए स्वामीके विवाहका सम्पूर्ण व्यय देताहै और नहीं देता तो उसको जेलमें भेजदिया जाताहै।

इनलोगोंमें मृतक देहको जलातेहैं, और इच्छाकरनेसे विधवा अपने स्वामीके साथ जलभी सकतीहैं, किन्तु विधवाविवाह प्रचलितहै, इस कारण उनको दूसरे मार्गमें नहीं जाना पडता। कभी २ इस जातिमें दो एक सतीदाह भी देखे गये हैं।

शासन-प्रणाली।

प्राचीन कालके समय यदि नैपालियोंमें कोई विशेष दोष करता तो उसका अङ्ग भङ्ग करदिया जाताथा या शरीरमें जगह २ डोरेसे काट देतेथे, अधिक क्या कहैं प्राणतक ले डालतेथ। बेंतभी मारे जातेथे। सर जङ्गबहादुरने विलायतसे लौटकर इस प्रकारके कठिन दंड उठादिये और नीचे लिखेहुए नियम बनाये-"कोई पुरुष राजद्रोह करै या राजकीय कामोंमें विश्वासघातकता करै अथवा संग्राममेंसे भागने आदिका राजसम्बन्धी कोई अपराध करै तो उसको जन्मभरका जेल या शिर काटनेका दण्ड दिया जायगा" कोई सरकारी आदमी घूंसले, या राजतहवील नष्टकरै, अथवा दूसरेकी अनजानीमें राजकोषसे रुपये लेकर किसीको सूदपर देदे तो उसके ऊपर विशेष रूपसे धनदण्ड कियाजायगा या कैदकी सजा दीजायगी और उसही समय नौकरीसे अलग कर दिया जायगा।

गाय अथवा मनुष्यकी हत्या करनेपर शिरकटनेकी आज्ञा दीजायगी। यदि कोई गायका चमडा किसी अस्त्रसे काटैगा अथवा क्रोधसे हत्या करडालेगा उसको जन्म-भरका जेल करदिया जायगा। कानूनसे बाहर चलनवाले आदमीको उसही धारा अनुसार धनदण्ड या जेल भोगना पडैगा।

कोई नीचश्रेणीका आदमी यदि अपनेको ऊंचे वंशका बतावे और किसी अच्छे-कुलवाले आदमीको जूठ खिलाना चाहै, तथा उसको जातिसे गिरानेका यत्नकरै तो उसके ऊपर यथोचित धनदण्ड और कारावास किया जायगा, अथवा उसकी सम्पत्ति छीनली जायगी। अपराध विशेष होनेपर उसको दास बनाकर बेचदियाजायगा। जो लोग जातिभ्रष्ट होजाते हैं वह उपवासादि प्रायश्चित्त करके या गुरु और पुरोहितको नियत धन देकर अपनी जातिमें फिर मिला जा सकते हैं।

ब्राह्मण और स्त्रियोंका शिर नहीं काटा जाता। ईश्वरकी अनुगृहीत अबला जातिको सबसे ऊंचा और कठिन दण्ड जीवनभरका कठिन कारावास है।

ब्राह्मणोंके लियेभी यही नियम है, केवल विशेषता यह है कि ब्राह्मण लोग जेलमें जाकर जातीय गौरवके सङ्ग २ ही जातिसे भी पतित होजाते हैं।

सेनाविभाग।

राज्यरक्षा और राज्यशासनके संबंधमें नैपालराज्यका बहुत रुपया खर्च होताहै जिन सुनियमोंके संग युद्धविद्या सिखाई जाती है, वैसेही तीर तोप और बंदूक बनानेमें

वहुतसा रुपया खर्च कियाजाताहै। गोरखा दलही सैनिकदलकी पुष्टि करताहै। यहां राजकोषसे वेतन पानेवाले सोलह हजार सैनिक हैं। यह सेनादल २६ रिजमेंटमें वटा हुआहै, इसके सिवाय नैपाल राजके नियमानुसार और वहुतसे लोग सेना विभागमें नियमित समयतक युद्धविद्या सीखकर कामसे छुट्टी लेसकते हैं। यह सवलोग गृहस्थीके कामोंमें लगे रहने परभी आवश्यकता होनेपर सेनामें भर्त्ती करलिये जाते हैं। नैपालमें इस नियमके होनेसे नैपालराजको सेनासंग्रह करनेका विशेप सुभीता रहताहै। वह इच्छा करतेंही एकदिनमें लगभग सत्तर हजार शिक्षित नैपाली सेना इकठी कर सकते हैं।

यहांके सिपाही अंग्रेजीरीतिके अनुसार शिक्षित ह, किन्तु सव विपयमें अंग्रेजी नियम नहीं है। सेनाका विभाग, सेनाके नायक, अधिनायक आदि सवही पद अंग्रेजी फौजके समान होनेपर भी क्रमानुसार उन्नति नहीं होती। राजपुत्र या राजकुटुम्वके लोग एक एक वर्षमें क्रमानुसार ऊंचा पद पाते हैं। किन्तु वूढे चतुर कर्मचारियोंको प्रायः सेना विभागके नीचेही काम करतेहुए देखाजाताहै, उनकी उन्नति सहजमें नहीं होती।

सैनिकोंका दैनिक पहिरावा नीले रंगका सूती जामा और पायजामा है, सामरिक, वेश,—लालरंगका जामा, काला ईजार, वगलमें लाल डोरा, पांवमें जूता, शिरपर टोपी और अपने दलका चिह्नयुक्त एक चांदीका तमगा रहताहै। तोपखानेके सिपाहियोंकी पोशाक नीली होती है। घोडे आदिके चलानेका स्थान न होनेसे नैपालराज्यमें घुडसवार सेनाकी संख्या वहुतही कम है। यहां वारूद, गोला और गोली वनानेका कारखाना भी है।

नैपालमें अवभी सेनाकी शिक्षाके लिये कवायद होती है। पहाडी देशमें, यह लोग वडी चतुरतासे युद्ध करते हैं। अंग्रेजोंके साथ युद्धमें इन्होंने दो वार कार्यतत्परता और युद्धकी चतुराई दिखाई थी, यही इस जातिके वीर्य्यशाली होनेका पक्का प्रमाण है। नैपालकी तोप और वंदूक आदि अस्त्र वहुत अच्छे नहीं होते। राज्यमें चार तोपें (mountain battery) हैं। सर्दार वावरजंगने नैपालसेनाध्यक्ष वनकर जव अंग्रेज सेनापतिको अपने व्यवहारसे तृप्त किया, तव अंग्रेजराजने मित्रताके चिह्नमें यह चार यन्त्र नैपालराजको उपहार दिये थे। राजाके अस्त्रागारमें अगणित तोपें होनेपरभी प्रतिदिन यहां तोप और अस्त्रादि वनाये जाते हैं।

दास प्रथा।

नैपालमें अबभी दासदासियोंके बेचनेकी चाल है। साधारण दशाके लोगभी अपने अपनें गृहकार्यके लिये दास दासी मोल लेते हैं। किन्तु यह दासप्रथा अफ्रीकाके पूर्व प्रचलित दासव्यवसायका दूसरा रूपहै। यहांके दासलोग केवल घरका कामही करते और बहुधा स्वाधीन रहसकते हैं। अफ्रीकाके मोललियेहुए दास अपने स्वामीसे कभी २ बहुतही सताये जातेथे, किन्तु नैपाली दासदासियें भारतवासियोंके घरमें रक्षित दासदासियोंके समान हैं। नैपालमें केवल खरीदते समय दाम देने होते हैं। धनी लोग ऐसे बहुतसे दास दासी खरीद लेते हैं।

नैपालकी वर्त्तमान दास संख्या ५५ हजार है। अगम्यागमन या ज्ञातिस्त्री संसर्ग आदि पापमें लिप्त होने अथवा जातिगत किसी दोषके करनेसे स्त्री पुरुष परिवार सहित दासरूपसे बेचदिये जाते हैं। इस प्रकारसे नैपालकी दाससंख्या दिन २ बढती ही जाती है।

खरीदी हुई दासियें सदाही घरके कामोंमें लगी रहती हैं, तथा बकरे और घोडेके लिये घास काटना आदि बहुतसे पुरुषोचित कामभी करने पडते हैं। कोई २ धनी इन दासियोंको अपने घरके बाहर नहीं निकलनेदेते; किन्तु अधिकतासे सब जगह दासियें अपनी इच्छानुसार घूमती हैं। दासियोंका चरित्र बहुत शुद्ध नहीं होता। घरके किसी न किसी आदमीसे प्रत्येकदासी फँसी रहती हैं। यदि खरीदनेवाले गृहस्वामीके सहवाससे दासियोंके सन्तान होजाय तो दासियें स्वाधीन होसकती हैं। किन्तु उस समय वह ऐसी ममतामें जकड जाती हैं कि किसी भांति भी उस घरको नहीं छोडतीं। दासीका मूल्य १५०) रुपयेसे लेकर २००) तक और दासका मूल्य १५०)से २००) रुपयेतक पडता है।

देव देवियोंकी पूजा और उत्सवादि।

देवता और ब्राह्मणोंमें भक्ति होनेके कारण नैपालमें देव देवियोंके असंख्य मंदिर हैं। २७३३ लिखने योग्य तीर्थ क्षेत्र या देवालय हैं, और इन सब देव मंदिरोंमें पर्वोंपर उत्सव होते हैं। प्रायः प्रतिदिनही एक दो उत्सव होते हैं। वर्षमें छः महीने तो उत्सव और पूजादिमें कटते हैं। दूसरे देशका आदमी नैपालमें जाकर देखेगा कि वहांके पर्व और उत्सवोंका अन्त नहीं है। अचरजकी बात तो यह है कि सब उत्सवोंमें लगे रहनेपर भी नैपाली लोग गृहस्थीका निर्वाह करते हैं। प्रत्येक निर्दिष्ट पर्व

दिन और उसके उत्सव आदिकी एक एक कथा लिखी गई है। पुस्तक वढ जानेके भयसे हम उसको नहीं लिख सकते। नेपालमें जितने प्रधान २ पीठ या देवालय हैं उनके पर्वदिन और उत्सव आदिकी वात वहुत संक्षेपसे लिखते हैं।

१-मत्स्येन्द्रनाथयात्रा-नैपालके देवता मत्स्येन्द्रनाथ पाटनके अन्तर्गत भोगमती ग्राममें हैं, वहां लिङ्ग भी स्थापित है। वर्षके पहिले दिन (वैशाखकी १ तारीखमें) पहिले उत्सवका आरंभ होताहै। उत्सवके दिन विग्रह स्नानके पीछे राजाकी तलवार उनके चरणोंमें रखकर पूजी जाती है। पूजा होजानेपर मत्स्येन्द्रनाथकी मूर्त्तिको एक सजेहुए रथमें विराजमानकर पाटनमें लेजाते हैं, और वहां एक मास रहकर पुण्यदिन व शुभ मुहूर्तमें फिर वेगमती ग्राममें लौटालाते हैं। उस मूर्त्तिको कम्वल उढाया जाताहै और स्थान २ में सवके सामने कपडा उठाकर दिखाते हैं इससे लोग समझते हैं कि देवता एक कंवलमेंही सन्तुष्ट है वह उपदेश देतेहैं कि सवको अपनी २ दशामें सन्तुष्ट रहना अच्छा है। इसका नाम गुदडीझाडा उत्सव है। पाटनसे लौटते समय जहां २ सेवकोंके भोजनको मूर्त्तिका अधिष्ठान होताहै, वहांके रहनेवाले भोजनादिका प्रवंधकर देते हैं। नेवारियोंमें भी नैपालके अधिष्ठाता आर्य्यावलोकितेश्वर-मत्स्येन्द्रनाथ देवके वडे और छोटे दो पर्वदिन नियत हैं।

२-नेता देवीकी यात्रा।

३-पशुपतिनाथ यात्रा।

४-वज्रयोगिनी यात्रा-वौद्धोंका उत्सव है-

वौद्धोंके अतिरिक्त हिन्दूलोग भी अव उनकी उपासना करते हैं। शङ्कु प्रदेशसे मणिचूड नामक पर्वतपर इस देवीका मन्दिर है। वैशाखकी तीजको उत्सव आरम्भ होता है। उस समय एक खाटपर वज्रयोगिनीकी मूर्त्ति रखकर शङ्कुनगरकी प्रद- क्षिणा करते हैं। इस मन्दिरके सामने खड्गयोगिनीका मान्दिर है। देवी मूर्त्तिके सन्मुख सदा आग जलती रहती है और एक मनुष्यके मस्तकका एक आका- रभी वहां है।

५-सीथी यात्रा-काठमाण्डू और स्वयम्भुनाथके मध्यवर्ती विष्णुनदीके तटपर ज्येष्ठ मासमें यह उत्सव होता है। सव लोग भोजनकर तीर्थ स्थानमें जाते और वहां दोदलोंमें वट जाते हैं। और दोनों दल एक दूसरेके ऊपर ईंटैं फेंकते हैं। पूर्व- कालमें यदि कोई ईंटकी चोटसे मूर्च्छित होजाता, तो दूसरे दलके लोग उसकी

चेतनाहीन देहको कङ्केश्वरीके मन्दिरमें लेजाकर बलि देते थे। राजकी आज्ञासे अब बालकोंका ईंट फेंकना वार्जित है।

६–**गोधिया मंगल** वा घंटाकर्ण–घंटाकर्ण नामक राक्षसको देशसे निकालदेनाही इस उत्सवका अभिप्राय है। बंगालमें प्रवाद है कि घंटाकर्ण वा घेंटूकी पूजा करनेसे गृहस्थ लडके लडकियोंको मारक रोग नहीं होता। नेवारबालक फूँसकी एक प्रतिमा बनाकर जगह २ लिये फिरते हैं ओर प्रत्येक मनुष्यसे भिक्षा मांगते हैं। उत्सवके अन्तमें बालक गण उक्त मूर्तिको जलाकर, आनन्द मानते हैं। यह उत्सव श्रावणमें होता है।

७–**बांडायात्रा**–बौद्धमार्गी नेवार जातिके पुरोहित लोग श्रावणकी ८ और भादोंकी १२ इन दो दिन प्रत्येक गृहस्थके पाससे वार्षिक करस्वरूप चावल और दूसरे अन्न लेनेके लिये वाहर निकलते हैं। इस भिक्षावृत्तिका यह अर्थ है कि, प्राचीन कालमें बांडालोगोंके पूर्वपुरुष बौद्ध पुरोहितगण भिक्षुक थे। उन महात्मा लोगोंके वंशवाले पुरुष उनके अनुष्ठित सत्कर्मका पालन करनेके लिये वर्षमें केवल दोवार भिक्षावृत्ति करते हैं। इस भिक्षान्नसे ही वर्ष भरतक उनका निर्वाह होता है। उस दिन नेवारी लोग अपने २ घर और दूकानोंको पुष्पादिसे सजाते हैं, और स्त्रियें चावल और दूसरा अन्न लेकर दूकान और घरके वाहर बैठजाती हैं। बांडालोगोंके द्वारपर आते ही उनको बहुतसा अन्न देकर विदा करती हैं। कोई धनी नेवारी इन दोनों दिनको छोडकर यदि और किसीदिन गुप्त भावसे अर्थात् इकलाही बांडलेगोंको ऐसी भिक्षा देकर विदा करना चाहते हैं तो बहुतसा धन विना खर्च किये उसकी यह इच्छा पूरी नहीं होसकती। इस उत्सवमें जो बांडा जिस गृहके द्वारपर पहिले जायगा उसको कुछ अधिक देना होगा। यदि कोई गृहस्थ इस उपलक्ष्यमें राजाको निमंत्रण करै, तो वह राजसन्मानरक्षार्थ एक चांदीका सिंहासन, छत्र और रांधनेके वर्तन राजाके चरणोंमें अर्पण करके अपनी मर्य्यादाका परिचय देगा।

८–**राखी पूर्णिमा**–श्रावणमासकी पूनोंकेदिन बौद्ध और हिन्दू दोनों सम्प्रदायही इस उत्सवको मानते हैं किन्तु दोनों दलोंकी क्रिया स्वतन्त्र है। बौद्धलोग उस दिन पवित्र नदीमें स्नान करके देव दर्शनको मन्दिरमें जाते हैं और ब्राह्मण पुरोहित लोग अपने शिष्य या यजमानके हाथमें रँगाहुआ डोरा बांधकर उनसे दक्षिणा लेते हैं। बहुत लोग पुण्यसंचयके अभिप्रायसे गोसाईंथान पर्वतके निकटवाले नीलकण्ठ सरोवर या गोसाईं कुण्डनामक स्थानमें स्नान करने जाते हैं।

९--**नागपंचमी**--प्रतिवर्ष श्रावण मासकी पञ्चमीको नाग और गरुडके युद्ध उपलक्षमें यह उत्सव होता है। चाम्बू नारायणके मन्दिरमें जो गरुडमूर्ति प्रतिष्ठित है, नैपालियोंका विश्वास है कि इस देवमूर्ति युद्धके श्रमसे पसीजती है। पुरोहितलोग एक अंगोछेसे पसीनेको पोंछते हैं। उनको विश्वास है कि इस अंगोछेका एक डोराभी सर्पविषके दूरकरनेको रामवाण है।

१०--**जन्माष्टमी**--श्रीकृष्णके जन्मोपलक्षमें यह उत्सव होता है।

११--**गोष्ट** या गांमी-यात्रा-केवल नेवारजातिमें ही यह उत्सव होता है, जिस गृहस्थके घरका कोई आदमी मरजाता है, उस परिवारके सव लोग भादोंकी पडवाको गोरूप धरकर राजमहलके चारों ओर घूमते व नृत्य करते हैं। अव केवल मुख ढककर साधारण नाचगानहीं होता है।

१२--**वाघयात्रा**--गाभयात्राके पीछे भादोंकी तीजको नेवार लोग वाघरूप धारणकर नाचते गाते हैं। यह भी गाभीयात्राकी छायामात्र है।

१३--**इन्द्रयात्रा**--भादोंमें यह उत्सव होता है और आठ दिनतक वरावर रहता है। पहिले दिन राजमहलके सामने एक ऊंचे काठकी ध्वजा फहराई जाती है और राजाकी ओरसे नियत हुआ नाचनेवालोंका दल महलके चारों ओर नाचता गाता है. तीसरे दिन राजा वहुतसी कुमारियोंको वुलाकर कुमारीपूजा करता है, फिर सवारीमें विठाकर नगरके वीचमेंसे निकालाजाता है। जव कुमारियें नगर घूमकर फिर राजमहलमें लौटती हैं, तव एकगद्दीके ऊपर महाराज वैठते हैं अथवा राजखड्ग उसके ऊपर रखदिया जाता है;। राज कर्म्मचारी अनेक प्रकारकी भेटैं देते हैं। इसदिन अनन्तचतुर्दशी होती है। गोरखोंके राजा पृथ्वीनारायणने इस पर्वदिनमें दल सहित आकर काठमाण्डू नगरमें प्रवेश किया था। महाराजके वैठनेको गद्दी विछाई गई, गोरखा राजगद्दीपर वैठगये। नेवार लोग उत्सवमें मग्न और नशेमें चूरथे इसलिये राजाका सामना नहीं करसके। नेवार राजा नगरसे भागगया, पृथ्वीनारायणने विना किसी वखेडेके नैपाल राज्यको अपने आधिकारमें किया। नैपालियोंको विश्वासहै कि इस अवसर पर यदि भूकम्प हो तो विशेष अनिष्ट होनेकी सूचना है। इस कारण नेवारी लोग भूकम्पके दूसरे दिनसे फिरभी आठ दिनतक उत्सव मानते हैं।

१४--**दशहरा** या दुर्गोत्सव--महालयासे विजयादशमीतक १० दिन यह उत्सव होता है। भारतवर्षके अन्य २ स्थानोंमें इस समय जैसा उत्सव होता है, यहां भी ठीक वैसाही होता है। उत्सवके इन दशादिनमें अनेक भैंसे और वकरोंकी वलि

दीजाती है। किन्तु वंगालके समान यहां मिट्टीसे दुर्गाकी प्रतिमा नहीं वनाई जाती। पहिले दिन अर्थात् घट स्थापनके समय ब्राह्मण लोग पूजाके स्थानमें पञ्च धान्य वोकर पवित्र नदीके जलसे सींचते हैं और दशमें दिन शिष्यादिसे प्राप्त हुए धनके वदलेमें आशीर्वाद स्वरूप न्योरते देते हैं।

१५–दिवाली–धनाधिष्ठात्री लक्ष्मी देवीकी पूजामें कार्तिककी मावसको यह उत्सव होत. है, और लोग सारी रात जुआ खेलते हैं, आईनमें जुआ खेलनेकी मनाई होनेपरभी उत्सवके समय तीन रात और तीनदिनमें किसीप्रकारकी वाधा नहीं। जुआ खेलने-वालोंके आने जानेसे मार्गोंमें वडी भीड होजाती है। रुपये पैसे आदिकी वाजी हार-जानेपर कभी २ अपनी स्त्रीतकको जुएमें हारजाते हैं। किसी समय एक आदमीने अपने हाथ काटकर वाजी वदी और जव वह जीतगया तो उसने दूसरे खिलाडीसे कहा कि तुम अपने हाथ काटकर मेरी वाजीका वदला दो, या अपना जीताहुआ सव रुपया उसके वदलेमें मुझे दो। संसारमें जुएके ऐसे शौकीन विरलेही हैं।

१६–क्किचा पूजा–नेवारजातिमें केवल यही उत्सव कार्तिकमें होताहै, सव नेवारीलोग कुत्तेकी पूजा करतेहैं, उसदिन नैपालके सव कुत्ते, गलेमें फूलोंकी माला पहरते हैं, इसही प्रकारसे भैंस, काग, और मेंडकोंके पूजनका भी दिन नियत है।

१७–भाईपूजा या भइयादोयज–कार्तिकशुक्ल द्वितीयाको सव स्त्रियें अपने २ भाईके घर आकर भाईके दोनों पैर धोती हैं फिर माथेपर टीका लगाकर गलेमें माला पहराती हैं और मिष्टान्नादि भोजन कराती हैं, भाई भी वहनको प्रसन्न करनेके लिये उसको कपडे गहने रुपये आदि देते हैं।

१८–वाला चतुर्दशी या शन्तु–अगहनकी चौदसको यह उत्सव होता है। उत्सवके दिन सव देशवासी पशुपतिनाथ मन्दिरके दूसरीओर मृगस्थली नामक वनमें जाकर वानरोंके भोजनके चावल और मिष्टान्नादि फेंकते हैं।

१९–कार्त्तिककी पूर्णिमा–इस पर्वोत्सवमें एकमास पहिलेसे अनेक स्त्री पुरुष पशुपतिनाथके मन्दिरमें जाते हैं, और पूरे एक मासतक उपवास करते हैं। सव स्त्रियें केवल मूर्त्तिके धोएहुए जलके अतिरिक्त और कुछ नहीं पीतीं। कार्त्तिककी पूर्णि-माको उपवासके अन्तमें लोग उत्सवादि करते हैं। उसी दिन पशुपतिनाथका मन्दिर दीपकोंसे सजायाजाताहै और सारी रात नाच गान होताहै। दूसरे दिन जिस पर्वत पर मन्दिर है, उस कैलास पर्वतके ऊपर स्त्रियें ब्रह्मभोज कराकर अपने २ घर लौट आती हैं।

२०-**गणेशचौथ** या चतुर्थी-माघमासमें गणेशपूजाके लिये यह उत्सव होता है। सारेदिन उपवास करके रातमें भोजनादिक करते हैं।

२१-**वसन्तोत्सव** या श्रीपञ्चमी-भारतवर्षके समान होतीहै।

२२-**होली** या दोललीला-फागुनकी पूर्णिमाको यह उत्सव होताहै उसदिन राज महलके सामने चीर या काष्ठादि एकत्र करके उसमें निशाना लगाते हैं, और रातको आग लगादेते हैं। नैपालियोंमें प्रवादहै कि पुरानेवर्षको जलाकर नये वर्षकी वाट देखनेका यह उत्सव है।

२३-**माघीपूर्णिमा**-माघमासमें नेवार युवक प्रतिदिन पवित्रसलिला वाघमतीके जलमें स्नानकरते हैं। इच्छानुसार प्रत्येक मनुष्य महीनेके पिछले दिन कोई हाथ, कोई पीठ, कोई छाती और कोई २ पैरोंपर दीप वालकर ढोलीमें लेटते हैं और स्नान करनेके घाटसे देवदर्शनको जाते हैं और स्नानक यात्रीभी उनके पीछे एक एक घडा लिये चलते हैं। घडेमें एक छेद होताहै, उसमेंसे बूँद २ पानी नीचे गिरताहै, सब उसको पवित्र समझकर अपने २ शिरपर छिडकतेजाते हैं। उसदिन बहुतलोग जलती अग्निको लियेहुए मार्गमें जाते हैं। इसकारण नेवारीलोग आंखोंकी रक्षाके लिये नीले रंगका चश्मा लगाते हैं।

२४-**घोडा यात्रा**-घोडोंका एक मेलाहै। चैतकी मावसको राजाकी आज्ञासे सब कर्मचारी अपने २ घोडे लेकर साधारण परेडके स्थानमें इकट्ठे होते हैं वहां सर जंगवहादुरकी प्रतिमाके पास राजा और ऊंचे कर्मचारी आनकर बैठते हैं। सब अपने २ घोडोंपर चढकर घुडदौड दिखाते हैं। जिस खंभेके ऊपर जंगवहादुरकी मूर्त्ति स्थापितहै; उस स्तम्भनिर्माणके वार्षिकोत्सवमें एक बडा मेला होताहै। गवर्नमेंट कर्म्मचारीलोग परेडके लिये निर्दिष्टस्थानमें आकर डेरे गाडदेते हैं। उसदिन भी सारी रात आनंद मनाया और जुवा खेलाजाताहै। अन्तिमदिन प्रतिमाके चारोंओर दीपक जलाकर उत्सव समाप्त होता है।

२५-**पिशाच चतुर्दशी**-वज्रेश्वरीवालादेवीका पर्वदिन है। चैत्रकृष्ण द्वादशीका बहुतसे लोग इस मन्दिरमें आकर एकत्र होते हैं। उसदिन देवीके सन्मुख नरबलि होती है। त्रयोदशीके दिन कन्या और बटुकको भोजन कराया जाताहै। तथा पिशाच चतुर्दशी व्रतकल्प आरंभ होताहै। सारीरात दीपक जलता रहताहै और अग्निकी रखवाली करत ह। दूसरे दिन प्रभातकाल वज्रेश्वरीदेवीको एक रथमें बिठ-

लाकर नगरमें घुमाते हैं, परिक्रमाके पीछे मन्दिरके निकट महादेवकी मूर्त्तिके पास लाकर स्थापन करते हैं। देवीका रथयात्रापर्व वडी धूमधामसे समाप्त होता है।

२६–**पञ्चलिङ्गभैरवयात्रा**–आश्विनशुक्ल पञ्चमीको यह उत्सव आरंभ होता है। कहते हैं कि उसदिन महाभैरवजी आकर खङ्गनी या कापायनी देवीके संग उस स्थानमें भोगविलास करते हैं।

२७–**हील्या यात्रा**–कान्तिपुर स्थापनके वहुत पहिलेसे देवमाहात्म्यको प्रकाशित करनेके लिये इस उत्सवका आरंभ हुआहै।

२८–**कृष्णयात्रा**–देवकीर्त्तिका डंका वजानेके लिये यह उत्सव होताहै। कान्तिपुरस्थापनके पहिलेसे यह प्राचीन उत्सव नैपालमें प्रचलितहै।

२९–**लाखियायात्रा**–शाक्यमुनि जब वोधिवृक्षके नीचे ध्यानमें मग्नथे, तव इन्द्र उनका ध्यान भंग करने आया, और उनके योगवलसे परास्त होगया। पीछे ब्रह्मादि देवगण शाक्यवुद्धको आशीर्वाद देने आयेथे। उसहीके स्मरणको यह उत्सव होताहै।

३०–**भैरवीयात्रा** और विषकाटी उत्सव–भातगाँओं नगरके अधिष्ठाता भैरवदेवके लिये नेवारजातिका यह उत्सवहै। वैशाखके पहिले दोदिनमें यह उत्सव होताहै। उसके निकटही शक्तिस्वरूपिणी भैरवी मूर्त्ति नेतादेवीका मन्दिरहै। उसदिन भैरव मन्दिरके सामने चकोरकी लकडी गाडकर उसकी पूजा होती है। इसका नाम लिङ्गयात्रा या विषकाटी उत्सव है।

३१–**अमिताभबुद्धका उत्सव**–स्वयम्भूनाथके मन्दिरसे अनेक प्रकारकी पवित्र सामग्री और अमिताभवुद्धका मुकुट लाकर काठमाण्डूमें यह उत्सव मनाया जाता है। पूजाके पीछे वांडा नामक वौद्ध ब्राह्मणोंको अन्न और अनेक प्रकारके पदार्थ दिये जाते हैं। पीछे देवोच्छिष्ट नैवद्यादि मार्गमें फेंक देते हैं, उस समय आए हुए वौद्ध नेवारीलोग वुद्धका पवित्र प्रसाद लेते हैं। फिर वांढालोगोंको भोजन कराके सव लोग एक संग मार्गमें निकलते हैं।

३२–**रथयात्रा**–इन्द्र यात्रासे यह उत्सव अलग है। सन् १७४० और १७५० ईसवीके वीचमें राजा जयप्रकाशके राज्यकालमें इस उत्सवका आरम्भ हुआ। एक समय एक सातवर्षकी वांढा लडकीने प्रलाप करते २ कहा कि, मैं कुमारी देवी या शक्तिके अंशसे उत्पन्न हुई हूं। राजाने उसको मिथ्या देवी समझकर नगरसे वाहर निकाल दिया और उसकी सम्पात्ति छीनली। उसही रातमें रानीको वायुरोग हुआ। उसने प्रलाप करते २ कहा कि "मेरे ऊपर देवी वैठी है" राजा यह

वात सुनकर विस्मित होगया, और सबके सामने वांढाकन्याको देवी कहकर यथोचित पूजासे उसका क्रोध शान्त किया। राजाने उस कन्याको अपने देशमें लाकर सब सम्प्राप्ति लौटादी। तवसे प्रत्येक वर्ष इस कन्याको रथमें वैठालकर सारे नगरमें घुमाते थे, इससेही रथयात्रा उत्सवका आरम्भ हुआ है। जैसे उडीसामें जगन्नाथ, वलराम और वीचमें सुभद्रादेवी स्थित हैं, वैसेही यहांभी देवीमूर्त्तिकी रक्षाकोलिये दो वांढाबालक नियुक्त हैं। यह भैरव या महादेवके पुत्र गणेश और कुमार (स्वामि कार्तिक) रूपसे गिनेजाते हैं। यही कुमारी इस देशमें अष्ट मातृका, अथवा वंगालेकी काली देवीवत् पूजीजाती है।

३३--**स्वयम्भूमेला** या स्वयम्भूकी उत्पत्तिका दिन--स्वयंभू देवके जन्मदिनमें आश्विनकी पूर्णिमाको यह उत्सव होता है। वर्षाऋतुके आरंभमें ज्येष्ठमाससेही स्वयम्भूनाथ मन्दिरके शिखर आदिको कपडेसे ढकदिया जाता है। पर्वके दिन कपडा उतारते हैं। वौद्ध धर्मावलंवियोंका यह वडा पवित्र दिन है, उसदिन नैपालकी सवही भावरोंमें वुद्धदेवकी पूजा होती है।

३४--**मत्स्येन्द्रनाथकी छोटीयात्रा**--काठमाण्डू नगरका एक वार्षिकोत्सव है. पाटनमें जैसा पद्मपाणिका उत्सव होता है, यहांभी वैसेही समन्तभद्रके लिये एक उत्सव होता है, किन्तु समन्तभद्रका नाम सर्व साधारणमें विशेष व्याप्त न होनेसे यह पर्वोत्सव नैपालके अधिष्ठाता मत्स्येन्द्रनाथके नामानुसार मत्स्येन्द्रनाथकी छोटी यात्राके नामसे विख्यात है। चैतकी शुक्लाष्टमीतिथिको उत्सव होता है। चार दिनतक रहता है। किन्तु दैवदुर्घटनासे यदि रथका पहिया टूटजाय या रथयात्रामें कोई विघ्न होजाय तो एकदिन अधिक होजाता है। पहिले दिन रानीपोखरासे आसनताल दूसरे दिन आसनतालसे दरवार, तीसरे दिन दरवारसे लाघवताल और चौथे दिन यहांसे फिर रानीका रथ लौटकर पोखरामें आता है।

३५--**रामनवमी उत्सव**--श्रीरामचन्द्रके जन्मोपलक्षमें गोर्खालोगोंका उत्सव है। चैत्रमासकी शुक्लाष्टमीको सूर्यदेव उत्तरायणमें चरण रखते है. गोर्खालोग उस शुभदिनमें अपने २ परिवारके सहित पूजा और देवगणको इच्छानुसार द्रव्य चढाते हैं। हिन्दुओंका यह उत्सव देखकर वौद्धनेवारियोंने इसी अष्टमीसे एकादशी तक समन्तभद्रके उत्सव मनानेको दिन नियत किये हैं।

३६--**नारायणपूजा** और उत्सव--शिवपुरी पर्वतके पास नीलकण्ठगांवमें और

नागार्जुन पर्वतके नीचे वालाजी ग्राममें विष्णुपूजाकी वडी धूमधाम होती है पहिले वडे नीलकण्ठमें यह उत्सव होता था, जहां एक छोटी पुष्करणीके मध्यभागमें शेष शय्याशायी नारायणकी बहुत वडी मूर्ति है। विष्णु मूर्तिके हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और शालिग्राम हैं। गोसाईं थान पर्वतवाले नीलकण्ठ सरोवरके पास महादेवकी वडी मूर्ति देखकर नैपाली लोग इन नारायणकी मूर्तिकोभी महादेवकी मूर्त्ति समझते हैं। बडे नीलकण्ठ तीर्थमें नैपाल राज्य और राज्यपरिवारके सब लोगोंको जानेका निषेध है, वौद्ध और हिन्दु इस तीर्थमें जासकते हैं। लगभग डेढसौवर्षके हुए कि जब नेवारी लोगोंने इस मूर्तिके अनुकरणसे वालाजीमें वालानीलकण्ठ नामसे नई नारायणमूर्ति स्थापन की थीं। दोनों स्थानोंमें ही हिन्दुओंके विष्णुजी वौद्ध लोगोंसे पूजे जाते हैं। हिन्दूलोग यहां नारायणमूर्तिको पूजते हैं, और मानसिक द्रव्यादि उपहार देते हैं, किन्तु वौद्ध लोग पूजाके अन्तमें नागार्जुन पर्वतवाले वौद्ध चैत्यके दर्शनको जाते हैं।

३७--उपरोक्त यात्राओंके अतिरिक्त **मठजातयात्रा**, (३८) **शृङ्गवेरयात्रा** (३९) **लोकेश्वर यात्रा**, (४०) **रक्तसर्पलोकेश्वर** यात्रादि बहुतसी यात्रा हैं।

स्कन्दपुराणके हिमवत् खण्ड और स्वयम्भू पुराणमें उक्त यात्राके किसी २ अंगका वर्णन है। नेवार जातिके उत्सवोंमें पर्वका काम हो या न हो, किन्तु उत्सवके वहाने नाच, गान, मांस भोजन और मद्यपान तो खूवही होता है।

फागुनमासकी शिव चौदसको नैपाली लोग शिवपूजा और रात्रि जागरणादि करते हैं। सव लोग पशुपति नाथके मान्दिरमें जाते हैं, और वाघमतीमें स्नान करतेहैं।

प्रसिद्ध स्थानादि।

नैपालराज्यमें चार नगर हैं किसी समय यह चारों नगरही अलग २ राजाओंकी राजधानी वने थे। वर्त्तमान राजधानी काठमाण्डू और पुरानी राजधानी कीर्तिपुर, पाटन और भातगांव यह चारों नगर विष्णुमती नदीके किनारेपर हैं। इसके अतिरिक्त और जितने प्रसिद्ध स्थान हैं उनमेंसे अधिकांश तीर्थस्थान या मन्दिरादिके लिये ही विख्यात हैं, और कोईभी कारण उनके विख्यात होनेका नहीं सव गांव हैं, नैपालमें ऐसे जितने स्थान हैं, उनमें वडा नीलकण्ठगांव वालाजी या छोटा नीलकण्ठ ग्राम, स्वयम्भूनाथ ग्राम, (यह सव विष्णुमतीकी खादरमें हैं। हरिग्राम, हय, रुद्रमतीके तटपर) चविजाघगांव और वोधनाथ ग्राम (रुद्रमती और वाघमती नदीके

चौचकी ऊंची भूमिमें) गोकर्णगांव देव पाटनग्राम, चरशहर, फिरफिङ्ग नगर (वाघमतीकी खादरके ऊपरी भागमें) शंकुशहर चांगुनारायण ग्राम, तिम्मि शहर (मनोहरा नदीके निकट) गोदावरी गाँव, (गदोडीफूल चोयापर्वतकी तलैटीमें) थानकेटशहर, (चन्द्रागिरिपर्वतकी तलैटीमें) इन सवका नामही लिखने योग्य है।

काठमाण्डू, कीर्तिपुर, पाटन और भातगांओं यह चारनगर नेवारी राजालोगोंके समय चारोंओर परकोटेसे घिरे हुएथे, और आनेजानेके लिये भीतोंके अनेक स्थानोंमें फाटक वनाये गयेथे। गोरखोंके समयसे यह सव भीतें गिरती जातीहैं। वहुतसे तोरण विलकुल गिरगयेहैं, किन्तु नगरकी सीमा उन प्राचीन भीतोंकी वरावरमें अवतक चलीगई है। उस समयके अनुसार नीचजातिके हिन्दूलोग (भंगी, कसाई, जल्लाद, इत्यादि) किसी नगरकी सीमाके भीतर नहीं रहसकतेथे। मुसल्मानोंके लिये ऐसा विधान नहींहै वहुतसे मुसल्मान नगरमेंही रहते हैं। सव नगरोंके प्रत्येक फाटकसे मिलाहुआ एक २ टोला या मोहल्लाहै। इन सव टोलोंकी म्युनिसीपिल्टी अलग २ हैं। म्युनिसिपिल्टियोंके हाथमें उन मोहल्लोंकी सफाईका भार सौंपागयाहै। इन चारों नगरोंमें एक २ राजमहल या दरवार है, जो नगरोंके वीचों वीचमें वनेहुएहैं। प्रत्येक दरवारके सामने कई खुलेहुए मैदानहैं, इनके मार्गसे महलमें आना जाना होताहै। मैदानोंके चारोंओर वहुतसे मन्दिर हैं। नगरके अतिरिक्त और २ स्थानोंमें भी यह मैदान देखेजातेहैं। काठमाण्डूमें ऐसे वत्तीस मैदानहैं। कचहरी आदि साधारण कार्योंके स्थान ऐसी जगह वनायेगये हैं। काठमाण्डू, पाटन और भातगांवके प्रधान २ मन्दिर दरवारोंके निकटहैं। कई मन्दिर दरवारकी सीमाके भीतरही वनेहैं कीर्तिपुरका दरवार पर्वतके ऊंचे स्थानमें था जो अव वह टूटगयाहै। उसके निकट टूटे फूटे मन्दिर अव भी हैं। दरवारोंके पीछे राजवाग हाथी घोडे वांधनेके घर वनेहुएहैं।

काठमाण्डूनगर तिरछा वसाहुआहै, वौद्धलोग कहतेहैं कि मंजुश्रीने इस नगरको अपने खड्गके आकारमें वसायाहै। हिन्दूलोग कहतेहैं कि भवानीके खड्गाकारमें यह नगर वना हुवाहै। खड्ग चाहे जिसका हो, किन्तु इसका मुष्टिभाग दक्षिणकी ओर वाघमती और विष्णुमतीके सङ्गमस्थलमें और उत्तरकी ओर तिम्मिलग्राममें नौकाका आकार कल्पित हुआहै।

काठमाण्डूसे उत्तर दक्षिणको आधेकोसकी चौडाईमें कहीं २ इससे अधिक है काठमाण्डूका पुराना नाम मंजुपाटन है। दरवारके सामनेवाले और पुराने कठैलेघरको नेवारीलोग सदासेही काठमाण्डू (काठमण्डप) कहते हैं इससे नगरका नामभी काठ-

माण्डू होगयाहै सन् १८९६ ईसवीमें राजलक्ष्मीन्द्रसिंहमल्लने काठमंडप वनवायाथा, यह कोई देवमान्दिर नहीं है, देशी और परदेशी संन्यासियोंके रहनेके लियेही वनाया-गयाथा, अवभी इसमें यही लोग ठहरतेहैं, शिवमूर्त्तिभी प्रतिष्ठित होगईहै । काठमा-ण्डूके पुराने ३२ फाटकोंमेंसे अवभी कई फाटक टूटीफूटी दशामें खडेहैं। इन वत्तीस फाटकोंसे लगेहुए वत्तीस टोले वैसेके वैसेंही हैं, उनमेंसे आसन टोला (शहरके उत्त-रांशमें रानी तलाओंके पास) इन्द्रचौक दरवारचौक, काठमाण्डूटोला, टोवाटोला और लघनटोला, आदि मोहल्ले लिखने योग्य हैं।

दरवारचौकमें दरवार या महल है। महलके उत्तरओर तल्लिजुमान्दिर, दक्षिणमें वसन्तपुर नामक मंत्रणागार, तथा नवीन दरवार (अभ्यर्थना घर) पूर्वमें राज्योद्यान, हास्तिशाला, तवेला, तथा पश्चिममें सिंहद्वार है । महलमें पुराने नैवारियोंके वनाये हुए प्राचीन गठनके घर और क्रमशः वनेहुए नये २ गठनके घर हैं । अव विला-यती नमूनेके घरभी वनगये हैं।

काठमाण्डू नगरमें जितने हिन्दू मन्दिरहैं, उनमेंसे तल्लिजु मन्दिरके आतिरिक्त और कोई मन्दिरभी देखने योग्य नहीं है।

नगरमें साठसे अस्सी हजारतक आदमी रहते हैं, जिसमें नेवारियोंकी संख्याही आधिक है। नगरके वाहर पूर्वकी ओर ठण्डी खेलनामक मठमें कवायदका मैदानहै, वीचमें पत्थरके चवूतरेपर सर जंगवहादुरकी एक गिल्टीकरी हुई मूर्त्तिहै। सन् १८५६ ईसवीमें जंगवहादुरने स्वयंही इस मूर्त्तिको स्थापन कियाथा । वारूदखानेमें जगन्नाथका मन्दिरहै। सन् १८५२ ईसवीमें जंगवहादुरनेही इसको वनवाया था । ठण्डीखेलके मार्गमें महाकालका एक वहुत पुराना छोटा मान्दिरहै नैपालके सव मन्दिरोंकी अपेक्षा यहांपर यात्री आधिक आतेहैं। इसके वीचमें महाकालनामक शिवकी जो मूर्त्ति है, वौद्ध लोग उस मूर्त्तिकोही पद्मपाणि वोधिसत्व लिखतेहैं । महाकालके शिरपर और एक छोटी मूर्तिवनी हुईहै । हिन्दूलोगइसको क्या कहतेहैं सो तो ज्ञात नहीं (कदाचित चन्द्रमूर्ति कहते हैं) किन्तु वौद्धलोग उसको पद्मपाणिकी अमिनाभ मूर्ति कहतेहैं । जो कुछभी हो इस मन्दिरमें हिन्दू और वौद्ध दोनोंही विभिन्नभावसे पूजा करते हैं।

नगरके उत्तर पश्चिमकोणमें जो पोखरा वनाया गयाहै उसके वीचमें देवीका मन्दिर है । मान्दिरमें जानेके लिये पाश्चिम किनारे एक पुल है । उसके ऊपर घास जमकर वडीही शोभा देती है । पहिले इस सरोवरकी अतुल शोभा थी, किन्तु सर जङ्गवहा-दुरने चारोंओर दीवारहाता कराके वह शोभा नष्ट करदी ॥

रानीपोखरा सरोवरके पूर्वोत्तरकोणमें नारायणका एक छोटा मन्दिर है। इसके चारों ओर देवदारुका सुन्दर वन है। जो बडा मनोहर है। पासही एक झरना है। इस स्थानका नाम नारायण हट्टी है। मन्दिरके सामने फतेजंग चौतरा नामक स्थानहै, जो थोडेही दिनोंका बनाहुआ है। पहिले यहां फतेजंग रहतेथे। रानी पोखरेके दक्षिणमें एक पत्थरके हाथीपर राजा प्रतापमल्ल और उनकी रानीकी पथरीली मूर्तिहैं। इस रानीनेही उक्त सरोवरको बनवायाथा।

काठमाण्डू नगरके पश्चिममें स्वयम्भूनाथ पहाडके दक्षिणको ऊंची भूमिपर छावनी और कवायदका मैदानहै। यह गोलन्दाज सेनाकी छावनी है। शहरके दक्षिणमें बाघमती और विष्णुनदीके संगम स्थलपर बाघमतीके दक्षिण किनारे सेनापति व्योम बहादुर द्वारा निर्म्मित दो तीन सौ गज लम्बा एक पत्थरका पक्का घाट है जो काठ-माण्डू कान्तिपुर जिनदेशी आदि नामोंसेभी विख्यात है। सुनाहै कि राजा गुण-कामदेवने कलि सम्वत् ३८२४ (सन् ७२ ईसवी) में यह नगर बसाया था।

रानी पोखरेके औरभी दक्षिणमें टण्डीखेल या तुडीखेल नामक छावनी है। जिसके पश्चिममें धरारानामका एक पत्थरका खम्भा है। भीमसेन थापानामक सेनापतिने इसको बनवायाथा, इसकी लम्बाई २५० फुटहै बीचमें सीढियें और द्वार हैं। १८५६ ईसवीके वज्राघातसे यह कई जगह टूट गयाथा, अब फिर मरम्मत होगई है। यहा पर भीमसेनका बनाया हुआ औरभी एक स्तंभ था, वह सन् १८३३ ईसवीके भूचा-लमें गिरगया। वर्त्तमान स्तंभका गठन और कारीगरी कोष्टक सुंदर है। काठमाण्डूके आधकोस उत्तरमें अंग्रेजी रेजीडेण्टका बंगला और बाग है।

काठमाण्डूसे जिस पुलके नीचे होकर बाघमती पाटनमें घुसी है, उसके उत्तरांशमें पत्थरके बने एक बडे कछुएकी पीठपर पत्थरका स्तंभहै स्तंभकी चोटीपर पत्थरके सिंहकी मूर्त्ति बनीहै। यह अद्भुत स्तंभ सेनापति भीमसेन थापाने बनायाथा सेतुको भी उसहीकी कीर्त्ति कहते हैं। पाटन, नैपालके सब नगरोंसे बडा है। इस नगरका दूसरा नाम ललितपत्तन है जो काठमाण्डूसे दक्षिण पूर्वको पौनकोसकी दूरीपर बाघ-मतीके दक्षिण और ऊंची भूमि पर है, गोर्खाविजयके पहिले नैपाल जिन तीन राज्योंमें विभक्तथा, यह पाटनभी उसहीमेंसे एक होकर नेवारकी राजधानी था।

कीर्त्तिपुर—चंद्रागीरि पर्वतके ऊपरवाले पहाडी मार्गके नीचे जितने गांव और नगर हैं, उनमेंसे थानकोट नगर कुछ विख्यातहै। इसकेही पूर्वमें पर्वतके ऊपर

बहुतसे ग्राम हैं, उनमें कीर्त्तिपुरही प्रधान है। पहिले एक स्वाधीन राजाकी राजधानी था, पीछे पाटन राजने इसको अधिकारमें किया। कीर्तिपुर निकटकी समतल भूमिसे चारसौ फुट ऊपर और पाटन तथा काठमाण्डू नगरोंसे डेढकोसकी दूरीपर है किंतु सदासेही इसका दुर्भेद दुर्ग विख्यातहै। सन् १७६५ से १७६७ ईसवीतक तीन वर्ष घिरे रहनेके पीछे गोर्खा राज पृथ्वीनारायणने इस नगरको छलसे लिया और विश्वासघातसे नगरमें प्रवेशकर बालक स्त्री बूढे इत्यादि सबही नगरवासियोंकी नाक कटवा ली जो लोग बांसुरी बजाना जानतेथे उनको इस दंडसे बचा दिया उस समय फादर गैसनी नामक एक पादरी कीर्तिपुरमें, था, उसने अपने लिखे नैपालके इतिहासमें राजाके अत्याचारकी बहुतसी बातें कहीं जो उस नाक काटनेके समय हुई थीं और कर्नलपैट्रिकभी इस घटनाके ३० वर्ष पीछे जब कीर्त्तिपुरमें गये थे तब उन्होंने कटी-नाकवाले बहुतसे लोगोंको वहां देखाथा। कीर्तिपुरकी जनसंख्या लग भग चार हजा-रके हैं। पृथिवीनारायणकी आज्ञासे कीर्तिपुरका नाम बदलकर "नासकाटापुर" रक्खागया। तबसे नगर क्रमशः ध्वंस होतारहा, मन्दिर और अटारियोंके संस्कारकी कोई चेष्टा नहीं हुई। पुराने फाटक और परकोटा टूटी अवस्थामें हैं। यहां केवल नेवारलोग रहते हैं। जल वायु स्वास्थ्यदायक है। पहाडमें कंठमाला रोग बहुत होताहै। परन्तु कीर्तिपुरमें ऐसा रोग एकभी नहीं, यहाँका दरबार और आसपासके मन्दिर पश्चिम सीमामें छोटे पर्वतके ऊपर बने हैं। जो कुछ खंडहर बचाहुवा है, उससे असली आकारका निश्चय करना अत्यन्त कठिनहै। पीलेरंगके पत्थर (अब नैपालमें ऐसा पत्थर नहीं बनता) के बने हुए दो मन्दिर अभी खडे हैं। छत गिर गई है, दीवारों पर घास जम गई है, किन्तु हाथी सिंहादिकी कई मूर्तियें अबभी रक्षित अव-स्थामें हैं यह मन्दिर सन् १५५५ ईसवीमें बनवाये गये। इनमें हर गौरीकी मूर्ति प्रतिष्ठित हुई थी। यहांके सबही मन्दिर टूटे फूटे हैं केवल जिनका व्यय राजकोषसे दिया जाताहै उनकी ही मरम्मत होतीहै, भैरवका मन्दिर प्रधान मन्दिरहै उत्सवके दिन बहुतसे यात्री आते हैं। मन्दिरमें कोई मनुष्याकार या लिंगरूपी देवप्रतिमा नहीं है। उन सबके बदले एक कई रंगके पत्थरकी व्याघ्रमूर्तिहै। यही देवमूर्तिकी भाँति पूजीजाती है। इन मन्दिरोंके पास औरभी दो तीन मन्दिरोंके पुराने खंडहर हैं।

कीर्तिपुरके उत्तरांशमें पर्वतके ऊपर गणेशका एक मन्दिरहै। मन्दिरकी कारीगरी बहुत सुन्दरहै। इसके ऊपर बनेहुए अधिकांश चित्र पौराणिक हैं। सन् १६६५ ईसवीमें जैसी जातिके संरिस्तेने इस मन्दिरको बनवाया। इस तोरणकी कपालीके बीचमें गणेश,

बायें मोरपै चढी कुमारी, उसके बायें महिपारोहिणी बाराही, उसके बायें शिवा रोहिणी चामुण्डा और गणेशके दक्षिणमें गरुडारोहिणी वैष्णवी, दायें ऐरावतपै चढी इन्द्राणी, उसके दायें सिंहपै चढी महालक्ष्मीजी और गणेशके ऊपर बीचमें भैरव, शिव, उनके बायें हंसपै चढी ब्रह्माणी और दायें वृषारोहिणी रुद्राणी मूर्ति बनी हैं। अष्ट-देवीकी इस मूर्तिको अष्टमातृका कहते हैं। दोनों द्वारके कोणमें मध्यविन्दुयुक्त षट्कोण यंत्रहै और दोनों ओर पक्षयुक्त सिंहकी मूर्तिके नीचे कलश और श्रीवत्स बना हुआ है। कीर्तिपुरके दक्षिण पूर्वांशमें "चिलनदेव" नामवाला एक बौद्ध मन्दिर है. यद्यपि मन्दिर छोटा है तौभी ऊपर बौद्धदेव देवियोंके, बौद्धशास्त्रोंकी बातोंके और बौद्ध विहारादिके चित्र बने रहनेके कारण मन्दिरका विशेष आदर है। कीर्तिपुरके पूर्व और काठमाण्डूके एक कोस दक्षिणकी ओर चौवहालनामक गांव है, उसके डेढकोस पूर्वमें भातगांव है ।

भातगांवों--महादेव पोखराशिखरसे डेढ कोस और काठमाण्डूसे दक्षिण पूर्वमें चारकोसकी दूरीपर हनुमाननद के बायें किनारे भांतगांओं नगर बसा है। इस नगरके पूर्व और दक्षिणमें हनुमानमती नदी और उत्तर तथा पश्चिममें कंसावती नदी बहती है, यह नगर शंखाकार है। भातगांओं और काठमाण्डूके बीचमें नदी बूढी और खेमी-नामक गांव हैं। खेमाग्राममें सुवर्णकी चीजें बहुतही अच्छी बनती हैं।

फिरफिङ्ग--यह छोटा सा नगर बाघमतीके दक्षिणमें है।

चम्पागांओं--पाटनसे दक्षिणकी ओर जो मार्ग गया है, उसके ऊपर यह छोटासा नगर बसा हुआ है। इसके पासकी पवित्र कुञ्जमें एक बहुत पुराना मन्दिर है.

हरिसिद्ध--पाटनसे दक्षिण पूर्वको जो मार्ग चला गया है। उसके ऊपर यह पुराना गांव है। इसको छोटासा नगर भी कह सकते हैं।

गोदावरी--या गदौरी--फूलचोया पर्वतकी तलैटीमें और पाटनसे दक्षिण मार्गके ऊपर यह नगर है। यह नगर नैपालको जातेहुए बडा पवित्र माना जाता है । यहां बारह वर्ष पीछे एक झरनेके पास एक महीनेतक मेला होता है। स्थानीय लोगोंमें ऐसा प्रवाद है कि, दक्षिणकी गोदावरी नदीके सङ्ग इस नदीका मेल है और उसके अनुसारही इस स्थानका नामकरणभी हुआ है। इसके आसपास बहुतसे छोटे २ मन्दिर और सरोवर हैं। गोदावरीका इलायची खेत बहुत बडा है। यहांकी इलायची बेचनेमें बडा लाभ है। पर्वत शिखरोंके ऊपर, गुलाब, चमेली, जुही फूल इतने अधिक होते हैं कि, वैसे नैपालके किसी स्थानमें नहीं होते। फूलोंकी अधिकतासेही इस पर्वतका

नाम फूलोच्चया " फूलचोया " हुआ है। इस पर्वतकी चोटीपर एक छोटासा पवित्र मन्दिर है, जहां वहुतसे यात्री जाते हैं। मन्दिरके पास दो मिट्टीके थंभ वनेहैं उनमेंसे एकके ऊपर वस्त्र वुननेके यंत्रका चिन्ह और दूसरेमें एक त्रिशूल बनां हुआ है।

पशुपतिनाथ--काठमाण्डूसे पूर्वोत्तरकी ओर एक मार्ग निकल कर नवसागर, नन्दीगाओं, हरिगांओं, चवाहिल और देशोपाटन ग्रामके वीचमें होता हुआ पशुपति-नाथ तक चला गयाहै। पशुपातिनाथ तीर्थ काठमाण्डूसे पूर्वोत्तरकी ओर डेढकोसकी दूरीपर है।

चंगुनारायण--पशुपतिनाथसे दो कोसकी दूरीपर यह नगरहै। इसके निकट मनोहरी नदी वहती है। चंगुनारायण चारगांवकी समष्टिहै। प्रत्येक गांवमें चार नामके चार नारायण मन्दिर हैं। मन्दिरके देवताका जो नामहै, उसके अनुसारही ग्रामोंका नाम रक्खा है। एकही दिनमें इन चार नारायण मूर्तियोंका दर्शन करना वहुत पुण्य-दायक गिनाजाता है। लोग सैंकडों कष्ट उठाकर भी दर्शन करनेको जाते हैं। इन चार मूर्तियोंके नाम यह है--चंगुनारायण, विशंकुनारायण, शिखरनारायण, एचंगु-नारायण. इन चारों गांवकी सीमा २२ कोस है।

शंकु--चंगुनारायणसे पूर्वोत्तरकी ओर एक कोसकी दुरीपर शंकु नगरहै। जो तीर्थस्थान मानाजाताहै। यहां भी वहुतसे यात्रियोंका समागम होताहै। इस स्थानमें सिद्धिविनायक (भातगांओंमें सूर्य्यविनायक) जी काठमाण्डूके आशुविनायक और चव्वरनगरके विघ्न विनायक नामसे विख्यात हैं।

गोकर्ण--पशुपतिनाथके पूर्वोत्तरको वाघमतीके किनारे विराजमान है जो नैपा-लके तीर्थोंमें विशेष प्रसिद्ध है। इसके निकट सर जंगवहादुरके यत्नसे शिकारका वन वनाया गया है।

वोधनाथ--पशुपतिनाथ और काठमाण्डूके वीचमें, पशुपतिनाथसे आधकोसकी दूरीपर उत्तरमें वोधनाथ (वुद्धनाथ) नामक गांव है। एक वडे वौद्ध मन्दिरके चारों ओरचक्राकारम एक गांव वसाहुआ है। मन्दिरकी वेदी गोलाकार है जो ईंटोंकी वनी हुई है, उस वेदीके ऊपर पूर्णगर्भ गुम्वजाकार मान्दिर है। कलश पीतलका वना ह। वेदीके ऊपर कुलंगीके वीचमें वोधिसत्वोंकी प्रतिमा है। कुलंगियें १५ इञ्च ऊंची और ६॥ इञ्च चौडी हैं। मन्दिरका व्यास १०० गज है। भोटिये और तिव्वती वौद्ध इस मन्दिरका विशेष आदर करते हैं। जाडेमें उक्त वौद्धलोग इस मन्दिरका

दर्शन करने आते हैं। यात्रियोंके आनेपर यहां धातु निर्मित वडे २ तावीज कवच तमगे और कण्ठी आदि वहुत विकती हैं भोटियालोगही इनको अधिक पहरते हैं।

नीलकंठ--शिवपुरी पर्वतकी तलैटीमें नीलकण्ठ सरोवरके किनारे नीलखेत या नीलकण्ठ नामसे एक गांव है। यहां भी नीलकण्ठ देवता विराजमान हैं।

वालाजी--काठमाण्डूसे विष्णुमती पार होकर एक निकुञ्जप्रान्त तथा नागार्जुन पर्वतकी तलैटीमें वालाजी गांव है। इस पर्वतके कुछ अंशको सर जंगवहादुरने हातेमें कर-दिया है जिसमें सुरक्षित मृगवन है। पर्वतकी तलैटीमें कुछ झरने हैं और इन झरनोंके उपर शयन किये हुये महादेवजीकी मूर्ति है यहांपर नेपालके राजाका एक वाग भी है।

स्वयम्भूनाथ--काठमाण्डूसे पश्चिममें पौनकोसकी दूरीपर स्वयम्भूनाथ गांव है। इस गांवमें पर्वतके शिखरपर वौद्धदेवता स्वयम्भूनाथका मन्दिर है। मन्दिरतक पहुँचनेके लिये चारसौ सीढियां हैं। मन्दिर दोसौ पचास फुट ऊंचेपर है। सीढियोंके नीचे शाक्यसिंहकी एक वहुत वडी मूर्तिहै वहीं पर तीन फुट ऊंची वेदीपै इन्द्रके वज्रकी एक मूर्ति है।

भोगमती--कीर्तिपुरके ढाई कोस दक्षिणमें वाघमतीके पूर्व किनारेपर यह गांवहै। इस गांवमें छः महीने तक मत्स्येन्द्र नाथकी प्रतिमा रथमें ही रहती है। कहते हैं कि, नरेन्द्रदेव और उनके आचार्य्य जव पाटनसे पवित्र जल भरा कलश लिये कपोत पर्वत-पर लौट रहेथे, तव एक दिन इस गांवमें ठहरेथे।

नवकोट--नवकोट (नयाकोट) उपत्यकाका प्रधान नगरहै। काठमाण्डूसे पूर्वोत्तरकी ओर ८॥ कोसकी दूरीपर धेवज्ञ या जिवजिवियाके दक्षिण पश्चिममें जो शिखा है, उसके ऊपर यह नगर वसा हुआहै। इस नगरके पूर्वमें आध कोसकी दूरीपर त्रिशूल-गङ्गा और पूर्व तथा दक्षिणमें आधकोसकी दूरीपर ताडी या सूर्यमती नदी वहतीहै। यहां दो दरवार या महलहैं। नैपालकी विख्यात भैरवी देवीका मन्दिर इसही नगरमें है। अंग्रेजोंके संग नैपालका पिछला युद्ध होनेतक नैपालराजका ग्रीष्मावास इसही नगरमें था। सन् १८१३ ईसवीमें नैपालराजने यहांका रहना छोडकर काठमाण्डूमें ही स्थायीरूपसे रहनेका प्रवन्ध किया और तवसे यहांके महल आदि गिराऊ खडेहैं सूर्यनदीकी ओर घना शालवन है चैतके महीनेमें, नयाकोट उपत्यका और तराईमें जाडा वुखार वहुतही फैलता है।

देवीघाट--नयाकोट नगरके पौन कोसकी दूरी पर देवीघाट नामक स्थान है। यहांपर त्रिशूलगंगा और सूर्य्यमती नदीका मेल हुआ है। इस संगम स्थलपर भैरवी

देवीका मन्दिर है वैशाखमासमें बुखार फैलनेके समय इस देवीके मन्दिरमें बहुतसे यात्रियोंका समागम होता है। मन्दिरमें कोई प्रतिमा नहीं परन्तु नयेकोटकी भैरवी देवी यहां लाई जाती हैं।

भानुर्वा–तराई प्रदेश है। इस नगरसे नैपाल जानेके लिये कोशी नदीको उतरना पडताहै इस स्थानके पास बहुतसा जंगल और मैदान है अतएव सेना निवासके लिये अच्छा स्थल है।

रंगोली–मोरङ्गतराईके बीचमें यह स्थान अच्छे जल वायुका गिना जाता है। यहांका जल वायु बहुत अच्छा है। नदीका जलभी निर्मल है। तराई प्रदेशमें हनूमानगंज, जलेश्वर बुडहरवा आदि शहर हैं।

नैपाल उपत्यकासे पश्चिमको कुमाऊँमें जाना हो तो नीचे लिखे प्रसिद्ध स्थानोंमें होकर जाना पडता है।

थानकोट–नैपाल उपत्यकाकी सीमाके अन्तमें है। यह एक छोटा और अच्छा नगर है।

महेशडोवंग–काठमाण्डूसे दस कोस पश्चिममें है। इस गांवके नीचे त्रिशूल गङ्गा और महेशखोला नदीका संगम है।

भंगकोटधार–काठमाण्डूसे बीसकोस पश्चिममें है। यहां सेनापति भीमसेनके बनाये हुए कई पाषाण मन्दिर हैं।

गोर्खानगर–धरमडी नदीके पूर्व या दक्षिण किनारेपर काठमाण्डूसे २६ कोसकी दूरीपर यह नगर बसा है। हनुमानवनजङ्ग पर्वतके उत्तर प्रतिष्ठित है जो वर्त्तमान राजवंशकी प्राचीन राजधानी है।

टनाहंगु–काठमाण्डूसे ३४ कोसकी दूरीपर है। इसही नामकी छोटी राजधानी भी यहां है। इसका दरबार गिराऊ खडा है।

पोखरा–सेतुगङ्गनदीके तटपरहै। यह एक छोटे परन्तु स्वाधीन राज्यकी राजधानी है। नगर बडा और बहुतसे लोगोंकी बस्तीका है। सब प्रकारका अन्न पायाजाताहै। तांबेकी बनी चीजोंका यहां व्यापार होताहै। एक बडा वार्षिक मेलाभी होताहै।

शतहुँ–पोखराके समान यहभी एक छोटे स्वाधीन राज्यकी राजधानी है। यहां भी एक दरबार है।

तानसेन–पोखरेकी नाई यहभी एक सामन्त राजाकी राजधानी है, पल्पिंदेशीकी छावनीभी यहां है जिसमें १००० सेनाके साथ एक काजी साहब रहते हैं। एक

नया दरवार और हाट है। गुरंगणके वने सूती वस्त्रका वडा भारी कारोवार है। यहांकी टकसालमें तांवेका सिक्का वनताहै। काठमाण्डूसे ६१ कोसकी दूरीपर पश्चिममें यह नगर वसा हुआहै।

पाप्लानगर—काठमाण्डूसे ६३ कोसकी दूरीपर है। यहां एक दरवार और भैरवनाथका मन्दिरहै।

पेन्टाना—काठमाण्डूसे ६३ कोसकी दूरीपर पश्चिममें है यहां वारुद और; वन्दूकका कारखाना है। निकटके मुपिनिया-भनजंग गांवसे यहां सोरा वहुत आताहै।

सलियाना—पोखरा राज्यके समान स्वाधीन राज्यकी राजधानी है, काठमाण्डूसे एक सौ दशकोशकी दूरीपर पश्चिममें इंवलखोलानदीके ऊपर है। यहां दरवार और मन्दिर आदिभी हैं।

जजुरकोट—एक प्राचीन राजधानी भेड़ी गंगानदीके किनारे वसी है। यहां दरवार और देवी मन्दिर गिराऊ खडा है।

तरिया—धैवंगपर्वत और जिवर्जिविया पर्वतकी एक शाखाके ऊपर तारियागांव है। यहां भोटियाजाति रहतीहै। इसके निकट एक वडी स्वाभाविक गुफा है। उसमें दो सौ तीन सौ आदमी रह सकते हैं। गोसाईंथान पर्वतके तीर्थयात्री लोग यहां विश्राम लेते हैं। नेवार लोग इसको भीमलपार्कु और पहाडी लोग "भीमलगुफा" कहते हैं। कहते हैं कि, भीमल नामक एक नेवार काजीने तिव्वत जीतनेके लिये सेनाका एक दल भेजाथा, तिव्वतके लामाने ऊपरसे इस गुफाके छतके समान पर्वतखण्डको नीचेकी सेनाके दवानेको छोडा, किन्तु भीमलने हाथसे रोककर उस पर्वतखंडको थामदिया। तवसे यह वैसाही वनाहै।

दुमचा—भीमल गुफासे डेढकोसकी दूरीपर दुमचा गांव है। यहां एक पत्थरका वना हुआ वुद्ध मन्दिर है। मन्दिरकी मूलकुंलगीमें वौद्ध त्रिमूर्ति और शिखर पर दो छत्र हैं। इस गांवके पास चन्दनवाडी पर्वतके ऊपर लौडी-विनायकका मन्दिरहै। लौडी विनायकके मन्दिरमें मूर्तिहीन पत्थरका खंडही गणेशकी प्रतिमा वनाकर पूजाजाताहै। जो कोई इस मन्दिरके दर्शन करने जाता है वह अपने हाथकी लाठी वहीं छोड आता है। यदि नहीं छोडता तो उसपर गणेशजी क्रोधित होजाते हैं।

इतिहास और पुरातत्त्व।

नैपालका विश्वास योग्य पुराना इतिहास नहीं पाया जाता। पौराणिक ग्रंथोंमेंसे अथर्व परिशिष्ट, स्कन्द पुराणके नागर खण्ड (१०२। १६) सह्याद्रिखण्ड (३९।९)

रेवाखण्ड, देवीपुराण, गरुडपुराण (८० । २) अरिष्टनेमि पुराणान्तर्गत जैन हरि वंश (११ । १२) । बृहन्नील तन्त्र, वाराही तंत्र, वराहमिहरकी बृहत्संहिता और हेमचन्द्रके स्थविरावली चरितमें नैपालका सामान्य वर्णन पाया जाता है। बौद्ध तन्त्र, बौद्ध स्वयम्भू पुराण और स्कन्द पुराणके हिमवत खण्डमें नैपालका कुछ थोडा बहुत वर्णन है। परन्तु इस थोड़े बहुत वर्णनसे पुर्ण इतिहास नहीं पायाजाता।

सुनते हैं कि, नैपालके अनेक स्थानोंमें पुराने वंशके धनी लोगोंमें समय समयकी राजवंशावली संग्रहीत है। प्रसिद्ध प्रत्न तत्त्ववित् भगवानलाल इन्द्रलालजीने नैपालमें रहनेके समय ऐसी वंशावलीका समाचार पाया था किन्तु दुःखकी बात है कि, वह उसको संग्रह नहीं करसके (१) आज कलकी बनी पार्वतीय वंशावली नामक पुस्तकमें संक्षेप रीतिसे नैपाल राजगणका संक्षेप वर्णन मिलता हैं। किसी २ यूरूपियनने इस वंशावलीके आधारसे नैपालका इतिहास बनानेकी चेष्टा की थी (२) किन्तु इन सब आधुनिक ग्रन्थोंमें ऐतिहासिक घटना क्रमानुसार नहीं लिखी है,उक्त वंशावलीके रचनेवालोंने भूतकालके इतिहासको पूरा करनेकी इच्छासे जो कुछ सुना वही लिख मारा है, हम नहीं कहते कि, उन पुस्तकोंमें असली इतिहास नहीं है, किन्तु घोलमेल होनेके कारण इनमेंसे कौनसा अंश असली और कौन सा मिलावटी है इसका जानना कठिनही नहीं वरन असंभव होगया है । इस कारण जो लोग ऐसी वंशावलीकी सहायतासे नैपालका इतिहास लिखने बैठे थे, उनमेंसे किसीका भी अभिप्राय सिद्ध नहीं हुआ ।

बौद्धपार्वतीयवंशावलीके मतसे, नैमुनीके द्वारा सबसे पहिले गोपालवंशने नेपालके अन्तर्गत मातां तीर्थमें राज्य प्राप्त किया। यह वंश ५२१ वर्षतक नैपालमें राज्य करता रहा। इसके ५३६ वर्ष पीछे जितेदास्ति नामक किरात वंशमें एक मनुष्यने राज्य पाया महाभारतके युद्धमें इस जितेदास्ति राजाने पाण्डवोंका पक्ष लिया था और कुरुक्षेत्रके युद्धमेंही उसकी मृत्यु हुई (३) यह बात कहांतक ठीक है सो तो

(1) Indian Antipuary Vol. XIII P. 411.

(2) (२) इन सब इतिहासोंमेंसे Franci's Hamilton's kingdom of Nepal, Kirkpatrick Nepal J. Prinsep's useful tables D. Wright's History of Nepal इतनेइतिहास अच्छे हैं।

(3) Some considerations on the History of Nepal by Pandit Bhagwan Lall Indraji.

हम नहीं कहसकते तथापि ऐसा ज्ञात होता है कि, जब किसी सभ्यहिन्दू सन्तानका नैपालमें राज्य नहीं था, उस समय नैपालमें ग्वाले गड़रिये त था मृगयाशील गोपाल और किरात लोगोंहीकी प्रधानता थी।

नैपालकी तराईसे जो अशोक लिपि निकली है, उससे जाना जाता है कि, नैपालके दक्षिणाञ्चलमें एक समय शाक्य राजा राज्य करते थे और वहींपर ज्ञानावतार शाक्य बुद्ध प्रगट हुए । वायु और ब्रह्माण्डपुराणमें शाक्यवंशीय एक राजाका नाम पाया जाता है, इससे अनुमान होता है कि, बुद्धदेवके पीछे भी शाक्य वंशके ५ । ७ पुरुषोंने यहां राज्य किया था । फिर सम्राट् अशोकको राजासिंहासन मिला।

इसके पीछेही नैपालमें पराक्रमी लिच्छविराज गणका उदय हुआ था । यद्यपि पहाडी वंशावलीमें लिच्छवि नाम नहीं लिखा है किन्तु हमने प्रसिद्ध प्रत्न तत्त्वविद् भगवान् लाल इन्द्रजीके यत्नसे इस लोप हुए राजवंशका परिचय भलीभांतिसे पाया है। नैपालका पुरातत्व संग्रह करनेके लिये नैपालमें जाकर भगवानलालनेही सबसे पहिले २३ पुरानी शिलालिपियोंका उद्धार किया । उनकी संग्रहीत शिला लिपियोंमें १५ लिच्छविराज गणके समयकी हैं (१) पीछे वेन्डेल साहबने और भी तीन शिला लिपियोंकी लिपि प्रकाशित की थीं (२) इन २८ लिपियोंको आश्रय लेकर डाक्टर फ्लिट और डाक्टर होरनलीने लिच्छविराज गणका धारावाहिक इतिहास लिखनेकी चेष्टा की, किन्तु खेदका विषय है कि, मसाला रहने परभी उन्होंने यथार्थ घटनाकी ओर वैसा ध्यान नहीं दिया जैसा चाहिये । अब यह दिखलाया जाता है कि, उन्होंने किस प्रकारसे लिच्छविराजाओंके समयको निर्णय किया है।

पण्डित भगवान लालने अपनी संग्रहीत १५ शिला लिपियोंसे नैपाल राजगणका जैसा धारावाहिक नाम और कालनिर्णय किया है सो नीचे लिखते हैं। (३)

१–जयदेव पहिला अनुमान सन १ ई० पंद्रहवीं शिलालिपि।

२–दूसरा, बारहवां इन ११ पुरुषोंके नाम शिलालिपियोंमें छोड़ दिये गये हैं।

(1) Dr. Bhagwan Lall Indraji's 23 Inscription from Nepal, translated from Guzrati of by Dr. Buhler.

(2) Bend all journey in Nepal P. 71–79 इन साहबने और आठ शिला लिपियोंको संग्रह किया है जो अभीतक पढी नहीं गईं।

(3) Indian Antipurry. 1884 P. 427.

(पंद्रहवीं लिपि)।

१३--वृषदेव अनुमान सन् २६० ई० |

(पंद्रहवीं और पहली शिलालिपि)

१४--शङ्करदेव अनुमान सन् २८५ ई० ।

(पहली और पंद्रहवीं शिलालिपि)

१५--धर्मदेव (राज्यवतीके संग विवाह हुआ। अनुमान सन् ३०५ ई० ।

(पहली और पंद्रहवीं लिपि)

१६--मानदेव, सम्वत् ३८६--४१३ या सन् ३२९--३५६ ईसवी ।

(पहली, तीसरी और पंद्रहवीं लिपि)

१७--महीदेव अनुमान सन् ३६० ई० ।

१८--वसन्तदेव या वसन्तसेन--सम्वत् ४३५ या सन् ३७८ ई० ।

(चौथी लिपि)

१९--उदयदेव अनुमान सन् ४०० ई० ।

२०--से२७--इन आठ पुरुषोंके नाम पंद्रहवीं शिलालिपिमें छोड दिये गये हैं।

२८--शिवदेव पहला अनुमान सन् ६१० ई० ।

(पांचवीं लिपि)

महासामन्त अंशुवर्म्मा (पीछे महाराज) ३४--४५ श्रीहर्ष सम्वत् या ६४०-१ ६५१--२ सन् ई० ।

(छठी, आठवीं लिपि)

२९--पंद्रहवीं लिंपिमें छोड़ दिया गयाहै ।

३०--ध्रुवदेव--श्रीहर्ष सम्वत् ४८ या ६५४--५५ सन् ई० ।

(नौमी दशमी लिपि)

जिष्णु गुप्त श्रीहर्ष सम्वत् ४६ या सन् ६५४--५५ ई०

(नौमी लिपि)

३१--पंद्रहवीं लिपिमें नाम छोड दिया गयाहै । कदाचित् विष्णुगुप्त हों ।

३२--विष्णुगुप्त । (नौमी लिपि)

३३--नरेन्द्रदेव--अनुमान सन ६९० ई० ।

३४--शिवदेव दूसरा । आदित्यसेनाकी कन्या और मौखरिराज भोगवर्म्माकी कन्या वत्सदेवीसे इसका विवाह हुआ श्रीहर्ष सम्वत् ११९--१४५ या सन्७२५--६--७५१--२ ई० ।

(वारह और तेरहवीं लिपि)

३५--जयदेव दूसरा परचक्रकाम। (गौडोड्र कलिङ्ग,कोशलाधिप) भगदत्तवंशीय हर्षदेवकी कन्या राज्यमतीसे इसंकां विवाह हुआ था (श्रीहर्ष सम्वत् १५३ या सन् ७५९--६० ई० (पंद्रहवीं लिपि)

उक्त विवरण प्रकाशित होनेके पीछे वन्डल साहवने नैपालसे सम्वत् ३१६ को सूचित करनेवाली शिवदेवकी एक शिलालिपि प्रकाशकी, इसमें अंशुवर्म्माका नाम होनेसे, प्रत्नतत्त्ववित् फ्लिटसाहवने यह अङ्क गुप्त सम्वत ज्ञापक अर्थात् ६२५--६सन् ई० वताए हैं। इस लिपिकी सहायतासे ही उन्होंने पूर्वोक्त भगवानलाल और डाक्टर वुहलर साहवका मत उलटा करादिया।

डाक्टर फ्लिटसाहवका मत।

डाक्टर फ्लिटसाहवके मतसे, शिवदेवके समयमें खुदी हुई ३१९ अंक चिह्नित लिपिही सवसे पुरानी है। उसका आश्रय लेकर उन्होंने समयानुसार संक्षिप्त राज-विवरण प्रकाश किया है (१) उसेही संक्षेपसे लिखते हैं।

१--**मानगृहसे**--भट्टारक **महाराजलिच्छविकुलकेतु** शिवदेव (१ म) इन्होंने महासामन्त अंशुवर्म्माके उपदेश या अनुरोधसे ३१६ (गुप्त) सम्वत्में अर्थात् सन ६३५ ईसवीमें एक ताम्रशासन दिया। इस शासनके दूतक स्वामी भोगवर्म्मन् हैं (२)।

२--**कैलासकूट भवनसे** महासामन्त **अंशुवर्म्माने** ३४ से ४५ हर्ष सम्वत् अर्थात् सन् ६४० से ६४९-५० ईसवीतक राज्यकिया।

३--अंशुवर्म्माके पीछे कैलासकूट भवनसे श्रीजिष्णुगुप्तकी लिपिमें ४८ सम्वत् अर्थात् सन् ६४३ ईसवी और मानगृहके स्वामी ध्रुवदेवका नाम है।

४--वृषदेवके परपोते, शङ्करदेवके पोते और धर्मदेवके पुत्र मानदेव ३८३ गुप्त सम्वत् अर्थात् सन ७०५ ईसवीमें राज्य करते थे।

५--परम भट्टारक महाराजाधिराज **श्रीशिवदेव** (दूसरा) ११९ हर्षसम्वत्में अर्थात् सन् ७२५ ईसवीमें राज्य करतेथे।

---

(1) Dr. Fleet's carpus Insriptionum Indicarum Vol. III P. 177. ff.

(२) डाक्टरफ्लिटने इस भोगवर्म्माको महासामन्त अंशुवर्म्माका वहनोई समझाहै।

६--पीछे ४१३ गुप्तसम्वत्में अर्थात् सन् ७३२--३३ ईसवीमें मानदेव नामक एक राजाका नाम पायाजाताहै।

७--इसके पीछे दूसरे शिवदेवकी एक दूसरी लिपिसे जाना जाताहै कि वह १४३ हर्षसम्वत्में अथात् सन् ७४८ इसवीमें राज्यशासन करते थे।

८--मानगृहके स्वामी श्रीवसन्तसेन ४३५ गुप्तसम्वतमें अर्थात् सन् ७४८ ईसवीमें विद्यमान थे।

९--जयदेव (दूसरा) विरुद परचक्रकाम-१५३ हर्ष सम्वत् या सन् ७५८ ईसवीमें इनकी लिपिमें प्राचीन लिच्छविराजगणकी वंशावली वर्णन की गई है।

१०--राजपुत्र विक्रमसेन ५३५ गुप्तसम्वत् अर्थात् सन् ८५४ ईसवीमें हुआ। डाक्टर फ्लिटने उपरोक्त राजगणकी पर्यालोचना करके निश्चय किया है कि नैपालके दो स्थानोंमें दो राजवंश राज्य करते थे, उनमेंसे एक वंश नैपालके प्राचीन लिच्छविराज वंश और दूसरा वंश महासामन्त अंशुवर्म्माने आरंभ है, उन्होंने ऐसे दो विभिन्न राजवंशोंकी सूची प्रकाश की है--

मानगृहका लिच्छवि या सूर्यवंश।

	१ जयदेव १ म अनुमान ३३०--३५५ सन् ·३० ई०
	२
	३
	४ शिलालिपिमें इन पुरुषोंके नाम नहीं पाये जात।
	५
	६
	७ अनुमान ३५५--६३० सन् ई०
	८
	९
	१०
	११
	१२
महाराज शिवदेव पहला ६३५ सन् ई७	१३ वृषदेव अनुमान ६३० सन् ६५५ई०
महाराज ध्रुवदेव ६५३ सन् ई०	१४ शंकर देव (१३ श, का पुत्र) अनुमान सन् ६५५--६८० ई०

	१५ धर्मदेव (इसी १४ श, का पुत्र) अनुमान सन् ६८०–७०४ ई०
	१६ मानदेव (१५ श, का पुत्र) सन् ७०५–७३२ ई०
	१७ महीदेव (१६ श, का पुत्र) अनुमान सन् ७३३–७५२ ई०
	१८ वसन्तदेव (१६ श, का पुत्र) सन् ७५४ ई०

कैलासकूट भवनका ठाकुरीवंश।

अंशुवर्म्मा महासामन्तके पीछे ६३५-६५५ई०	उदयदेव अनुमान सन् ६७५--७०० ई०
	नरेन्द्रदेव (उदयका पुत्र) अनुमान सन् ७००--७२४
	शिवदेव (२ य) नरेन्द्रका पुत्र सन् ई० ७२५--७४८
जिष्णुगुप्त ६५० सन् ई०	जयदेव (२ य) शिवदेवका पुत्र सन् ७५०--७५८ ई०

पीछे डाक्टर होरनलीने उक्त सूची ग्रहण की थी (१)

ऊपर जो मत लिखे हैं उनमेंसे पिछला मत सवही ग्रहण करते हैं। किन्तु जहांतक विचार कियाजाता है उससे ज्ञात होता है कि यह ठीक नहीं है । पूर्वोक्त शिलालिपियोंके अक्षर, पूर्वापर घटनावली और सामयिक वृत्तान्तसे जानसकते हैं कि डाक्टर फ्लिट और डाक्टर होरनलीने बहुतसी छानवीन करके जो सिद्धान्त. ठहराया अव उसका सम्पूर्ण परिवर्त्तन करना आवश्यक हुआ है।

पण्डित भगवान्‌लाल और वुलरसाहवने जो मत प्रकाश किया है, उसका कोई २ अंश भ्रान्तिपूर्ण होनेपरभी उसमें इतिहासकी बहुतसी यथार्थ बातें आगई हैं।

उक्त शिलालिपियोंके अक्षरोंका विचार।

पण्डित भगवान्‌लाल संग्रहीत प्रथम लिपिसे ही आलोचना करके देखना चाहिये

(1) Journal of the Asitip Society of Bengal. for 1889, pt. 1. Synchronistic table.

१ म् अर्थात् मानदेवकी लिपि ३८६ (अज्ञात) सम्वत्में खोदीगई। पण्डित भगवान्‌लाल और बुलरसाहबने इसकी अक्षरावलीको गुप्त अक्षर कहा है। किन्तु डाक्टर फ्लिट साहबके मतसे खृष्टीय अष्टम शताब्दीके अक्षर हैं। हमारे विचारमें इसकी अक्षरावली पांचवीं ईसवी शताब्दीकी है। कारण कि ईसवीकी आठवीं शताब्दीमें जो लिपि उत्कीर्ण हुई और उत्तर भारतसे आविष्कृत हुई हैं, उनमें मात्राकी पुष्टिका आरंभ देखाजाता है। इसके अतिरिक्त उस समयके व्यञ्जनयुक्त स्वरादिकी अर्थात ा, ि, और े आदि स्वर चिह्नोंकी अनेक पूर्णता देखी जाती है, किन्तु मानदेवकी लिपि मात्राहीन और इसके स्वर चिह्न वैसे पक्के नहीं है। अक्षरविन्यास गुप्तसम्राट समुद्रगुप्तकी इलाहाबाद लिपिके समान है। इसमें व्यञ्जन-युक्त स्वर वर्णोंका जो ढाल है, वह सन् २ से ४ ईसवीकी लिपिमालामें ही पाया जाता है। इसके बहुतसे स्थानोंमें क, ज, त, द, ध, प इत्यादि अक्षरोंका बनाव सन् २ से ४ ईसवीमें खुदी हुई शिलालिपिमें दिखाई देता है। केवल इसके न, म, श, ष, यह कईएक अक्षर हमने पुरानी लिपिमें नहीं [illegible], सन् ४ और ५ ईसवीमें खुदी हुई लिपियोंमें पायेगये हैं। इसके अतिरिक्त अ, आ, इ, इन तीन स्वरोंका जैसा रूप है, वह केवल सन् २ से लेकर ४ शताब्दीकी खुदीहुई लिपिमें बहुत पता लगानेपरभी नहीं पासके।

सन् ६ इसवीमें उतारीहुई मानदेवकी गयावाली लिपि ÷ और सन् ७ शताब्दीमें उतारेहुए सुवर्णपत्रसे प्राप्त सम्राट्हर्षवर्द्धनकी लिपिका विचार करनेसे सहजमें जाना जासकताहै कि, उक्त मानदेवकी लिपि, पिछले कहेहुए समयकी लिपिसे कितनी प्राचीन है। अतः मानदेवकी शिलालिपिके अक्षरोंका गठन देखकर सन् ७ या ८ शताब्दीकी लिपि किसी प्रकार नहीं कहसकते, किन्तु सन् ४ या ५ शताब्दीकी लिपि मानकर सहजमें ही ग्रहण करसकते हैं। अतएव मानदेवकी लिपिमें जो अंक पडे हैं उनको शकाब्द ज्ञापक अंक मानकर ग्रहण करनेसे कोई दोष नहीं होसकता। पण्डित भगवान् लालने उनको विक्रम सम्वत्का अंक मानाहै। किन्तु उत्तर भारतकी निकली पांचवीं ईसवी शताब्दीसे पहली किसी लिपिमें विक्रम सम्वत्के बतानेवाले अंक अब तक नहीं पायेजाते। किन्तु सन् ईसवीकी पहली, दूसरी, तीसरी तथा चौथी शता-

---

÷ Fleet's Corpus inscription indicarum, Vol. III. Plates XLI, and XXXII. B.

ब्दीमें खुदीहुई उत्तर भारतकी बहुतसी लिपियोंमें केवल " सम्वत् " नामसे शक सम्वत्का ही प्रमाण पायाजाताहै । इस कारण हम शक सम्वत्के नामसेही उसको ग्रहण करते हैं।

तीसरी अर्थात् वसन्तदेवकी लिपि है । डाक्टर फ्लिटने इसको सन् ईसवीकी आठवीं शताब्दीका माना है । किन्तु जिन कारणोंसे हमने मानदेवकी लिपिको प्राचीन समझाहै, उन्हीं कारणसे वर्त्तमान शिलालिपिको भी सन् ईसवीकी पांचवीं व छठवीं शताब्दीके अक्षरवाली अर्थात् ४३५ शकसम्वत्की लिपि कहकर ग्रहण करसकते हैं।

चौथी अर्थात् ५३५ सम्वत् सूचक लिपि, डाक्टर फ्लिटसाहेवके मतसे सन् ९ ईसवीकी नवीं शताब्दीकी लिपि है । किन्तु इस लिपिके अक्षरोंका ढाल चौथी और छठीशताब्दीके बीचमें उतारीहुई लिपियोंमें ही देखा जाताहै ।(१) इस शिलालिपिके किसी पूरे शब्दके अक्षर उस शिलालिपिमें जो ईसवीकी आठ या नवीं शताब्दीमें बनी है पाये जाते हैं ॥ (२)

प्रथमतः शिवदेव और अंशुवर्माके समयकी लिपि देखनेसे ई० सातवीं शताब्दीकी लिपिही ज्ञात होती है। किन्तु जब जापानके" होरिउजूमठ " की ताडपत्र पर लिखी पोथियोंका लेख देखते हैं तब शिवदेवकी लिपिको ईसुई सातवीं शताब्दीकी लिपि मानलेनेमें सन्देह होताहै । होरिउजूमठकी सब पोथियांही भारतके लेखकद्वारा उत्तर भारतमें लिखी गईं और सन् ५२० ई० के कुछही पहिले बौद्धाचार्य्य बोधिधर्मद्वारा चीनमें लाईगई है। चीन देशसे सन् ६०९ ई० में जापान गईं । (३)

---

(1) Dr. Buhler'r gundriss (Indischen PalXographaie IV tafel.

(2) इन लिपियोंको देखो. The inscription of Gopala (Cunningham's Mahabodhi) and Devapala (Ind. Ant. XVII, P. 310)

(3) Professer Max Muller's Latter, in the transactions of the 6th international Congress of orientalists held at Leiden, P. P. 124 128.

इस पोथीकी प्रतिलिपि प्रसिद्ध अध्यापक मैक्सम्यूलर साहवने प्रकाशित की है और उसको देखकर डाक्टर वुलरने इस पोथीकी लिखावटको सन् छठी ईसई शताब्दींके प्रथम भागकी लिपि माना है (१) इस पोथीकी लिखावट और शिवदेव तथा अंशवर्म्माके समयकी लिखावटमें वहुत कुछ समानता है. । दोनों अक्षरोंकी वनावट और भाषाम वहुतसा मेल होनेपर भी शिवदेवकी शिलालिपिमें वहुत प्राचीनता पाईजाती है । डाक्टर वुलरने वहुत कुछ विचार करनेके पीछे निश्चय किया है कि शिलालिपिके अक्षरोंकी वनावट ऐसी है, जैसी राजकीय कागजपत्रोंपर लिखे जानेसे वहुत पाहिले विद्वानोंकी लिखावट समझी जातीथी ।

लिखने पढनेमें पहिले जिसका व्यवहार होताथा, राजकीय खुदीहुई लिखावटमें भी वहुधा उसहीका व्यवहार हुआ करताहै । किन्तु प्रश्न होताहै कि यदि विद्वानोंमें पुस्तकरचनाके समय किन्हीं विशेष अक्षरोंका व्यवहार हो तो उस समयकी राजलिपियोंमेंभी वही लिखावट क्यों नहीं पाईजाती प्राचीन शिलालिपियोंको देखनेसे जान पडता है कि राजकीय शासनादिको राजसभाके प्रधान २ पण्डित लिखते थे यहांतक कि ताम्रशासनके किसी २ श्लोकको राजालोग स्वयं भी वनाकर अपनी कविताशक्तिका परिचय देतेथे अव यह समझमें नहीं आता कि ऐसे अवसरपर राजालोग सामयिक पुस्तकोंके अक्षरोंकी वनावट न लेकर पुराने अक्षरोंकी वनावट क्यों लेंगे; इससे ज्ञात होताहै कि राष्ट्रकूट राजहद्द प्रशान्तरागके, हस्ताक्षर देखकर डाक्टर वुलरने लिखाहै ।

अधिक संभवहै कि, सन् ईसवीकी छठी शताब्दीके प्रथम भागमें भी उत्तर भारतके आधे अंशमें दो प्रकारके हस्ताक्षर प्रचलित थे (२)

पाहिलेही लिखचुके हैं कि, शिवदेवकी लिपिको डाक्टर फ्लिटने मानदेवसे वहुत पहिलेकी मानाहै । किन्तु खुदीहुई लिपिके धारावाहिक कालानुसारी अक्षरोंका विचार करनेसे, मानदेवकी लिपि वहुत पुरानी जान पडतीहै । ऐसे अवसरमें कौनसी वात ग्रहण करनी चाहिये ! यदि हम सातवीं शताब्दीमें अर्थात् ६३५–६५० ईसवींमें शिवदेव और महासामन्त अंशुवर्म्माका यथार्थ समय माने, तो सामयिक इतिहासके

(1) Anecdota Oxoniensia Vol. L. Pt. III, P. 64.
(2) Dr. Buhler's Remarks on the Harivzi Palm-leat M. S. S. (Anecoxon Vol I, Pt.III, P. 65)

साथ विरोध आपडैगा। ऐसे स्थलमें यदि वुलरसाहवके इस मतको कि, एक समयमें दो प्रकारकी वर्णमाला प्रचलित थी. मानकर शिवदेव और उस महासामन्तको सन् ५ ईसवीका मानलें तो किसी प्रकारका वखेड़ा नहीं रहता।

उक्त लिच्छविराजके समयकी खुदी हुई दो लिपियोंकी प्रतिलिपि वेन्डल साहवने प्रकाश की है, वे दोनों एक समयकी हैं, तथापि अक्षरोंमें कुछ अन्तर पाया जाताहै। पहलीके स्वर चिह्नोंकी वनावट जैसे ('ा' 'ि') देखनेसेही दूसरेकी अपेक्षा नई अर्थात् छठी ईसवी शताब्दीके पीछेकी जान पडतीहै। किन्तु दूसरी लिपिके अपुष्ट स्वरचिन्होंकी वनावट(ि) और (ा) देखनेसे इसकी प्राचीनतामें वैसा सन्देह नहीं रहता। पंडित भगवान् लालकी प्रकाशित पांचवीं शिलालिपि भी उक्त शिवदेवकी दी हुई है, तथापि इसका ' आ ' देखनेसे वेन्डल साहवकी प्रकाशित लिपिके समयकी नहीं जानपडती। इसही प्रकार पंडित भगवानूलालकी सातवीं लिपिका आकार (ा) और वेन्डल साहवकी पहली लिपिका (ा) मिलाकर देखनेसे पिछला (ा) वहुत शताब्दी पीछेका जाना जायगा। पंडित भगवानूलालकी पहिली लिंपिका आकार उनकी सातवीं लिपिमें कुछ २ पुष्ट हुआहै इस ही कारणसे पंडितजीने सातवीं लिंपिको पहिली लिपिसे वहुत पीछेकी वताया है। किन्तु वेन्डल साहवकी प्रकाशित पहली और दूसरी शिलालिपिके और पंडित भगवानलालकी ५--६ ७-८ वीं शिलालिपिके अक्षरोंका विचार करनेसे आठवीं सवसे पीछेकी खोदी हुई होने परभी सवसे पुरानी ज्ञात होतीहै आठवीं लिपिकी तीसरी पंक्तिके "वार्तेन" शब्दका "वा" और पहली लिपिके द्वितीयांशकी सोलहवीं पंक्तिका "वा" मिलाकर दखनस कुछभी भेद ज्ञात नहीं होता। किन्तु पथम संख्याकी वर्णावली मात्रा शून्य है और ५ से ८ में कुछ मात्रा आरम्भ हुई हैं। इधर "होरिडजीकी" पोथीमें स्पष्ट मात्रा होनेसे पांचवींसे आठवीं लिपि सन् ईसवीकी पांचवीं शताब्दीके किसी समयमें खोदींगई हैं इसको मान लेनेसे कोई आपत्तिं नहीं रहती। नवीं दसवीं ग्यारहवीं इन तीनका वर्णन पाठ करनेसे पांचवींसे पीछेका ही ज्ञात होताहै वारहवींसे लेकर पंद्रहवीं शिला लिंपिकी अक्षरावलीके सम्वन्धमें जो राय, पुरावृत्त जाननेवालोंने प्रकाशित कीहै, उसके संग हमारा विशेष मत भेद नहीं है तथापि इन शिलालिपियोंमें ल्खेहुए दूसरे शिवदेव और दूसरे जयदेवके राज्यकाल सम्वन्धमें, हमको जो संदेहहै सो आगे लिखेंगे।

पंडित भगवानूलाल, डाक्टर वुलर और डाक्टर फिल्ट इन सवने ही वारहवीं लिपिके

अंकको '११९' पढाहै। किन्तु उन्होंने बीचके अक्षरको दशका अंक कैसे माना सो समझमें नहीं आता। नैपाल और उत्तर भारतकी खुदी लिपियोंके संख्यावाचक अक्षरादि निर्णय करनेके लिये जितनी सूची हैं उनमें भली भाँति मिलाकर देखनेसे उक्त मध्य अक्षरको (१०) नहीं कहा जासकता, किन्तु (१०) की जगह (४०) अंक ज्ञात होताहै, इसके अनुसार इस लिपिके अंक १४९ पढे जासकते हैं।

इसही प्रकार पन्द्रहवीं लिपिके संख्यासूचक अंकोंको उक्त साहबोंने १५३पढा है किन्तु इस संख्याके बतानेवाले तीन अक्षरोंमें पिछला अक्षर और बारहवीं लिपिके पिछले अक्षर एकसे हैं। अब प्रश्न यह है कि, एकको उन्होंने (३)और दूसरेको (९) क्यों पढा? संभव है कि, दोनोंका पिछला अंक (९) हो इस कारणसे पन्द्रहवीं लिपिके संख्या अक्षरोंको (१५९) समझना चाहिये।×

धारावाहिक इतिहास।

पंडित भगवान् लालके संगृहीत लिच्छविराजजयदेव परचक्रकामके शिलापट्टमें निम्न लिखित वंशावली है-

लिच्छवि (सूर्यवंश)
|
(सुपुष्प (पुष्पपुरमें वास)
|
(फिर यथाक्रमसे २३ पुरुष पीछे)
|
जयदेव (१ नैपालका राजा)
|
इसवंशके ११ राजा।
|
वृषदेव।
:
शंकरदेव।
|
धर्मदेव।
|
मानदेव (३८६-४१३ शकाब्द।
:
महीदेव।
|
वसन्तदेव (४२५ शकाब्द)
|
उदयदेव (१)--
|
नरेन्द्रदेव।
|
शिवदेव दूसरा (१४३-१४९ अज्ञात सम्वत)
|
जयदेव--परचककाम (१५९ अज्ञात सम्वत)
|

×गुप्तराजवंश शब्दके पिछले अंशमें इससे पहिले जो लिच्छविराजगणकी तारीख

नैपाल राज लिच्छवि राजगणके समयकी जितनी शिलालिपि प्रकाशित हुई हैं, उनमेंसे पन्द्रहवीं शिलालिपिमें जो वंशावली लिखी है, वह धारावाहिक है, और कुछ २ पूर्णभी है। उक्त वंशावलीके आश्रयसे ही हम नैपालका प्राचीन और प्रामाणिक संक्षिप्त इतिहास लिखते हैं----

यद्यपि नैपालकी पार्वतीय वंशावली विश्वासके योग्य नहीं, व उसमें वहुतसी वातें इधर उधरकी हैं, तौभी उसमें वहुतसी यथार्थ व ऐतिहासिक वातें भरी हुई हैं, इस वातको पंडित भगवान्लाल आदि सवही विद्वानोंने स्वीकार किया है। इस वंशावलीके एक स्थानमें लिखा है--

सूर्य वंशीय राजा विश्वदेव वर्म्माने ठाकुरवंशीय अंशुवर्म्माको अपनी कन्या अर्पण की। इस राजाके समयम विक्रमादित्य नैपालमें आये और अपना सम्वत् चलाया। अंशुवर्म्माभी राजा हुआ था। उसने मध्यलखु (कैलासकूट) नामक स्थानमें अपनी राजधानी वनाई थी। उसके समयमें विभुवर्म्माने सात सोतेवाली एक नहर तैयार करके उसके निकट एक खुदा हुआ शिलापट्ट (१) स्थापन किया (२)

पंडित भगवान्लाल और डाक्टर वुलर साहवने कहा है कि,' अंशुवर्म्माके समय विक्रमादित्यके नैपाल जानेकी वात सम्पूर्णतः मिथ्या है। ज्ञात होता है कि, श्रीहर्षदेवके विजय उत्सवमें उसका सम्वत् नैपालमें ग्रहण किया गया होगा वही क्षीण स्मरण इस उलटी पुलटी वंशावलीमें भ्रमसे दिखाया गया है। (३)

--सनूके साथ लिखी है, वहुतसी छानवीन करनेसे अव उसमेंभी वहुतसी भूल दिखाई देती है।

--(१) पंडित भगवान्लालजीने जो पाठ उद्धार किया है, उसके अनुसार उदयदेवके पीछे १३ राजा हुए और उनके पीछे नरेन्द्रदेव राजा हुआ किन्तु इस अंशका पाठ ठीक नहीं है। शिलालिपिसे ठीक २ यह वात नहीं जानीजाती कि, उदयदेवके पीछे यथार्थमें कौन राजा हुआ। आगेको इस वंशमें नरेन्द्रदेव राजा हुआथा।

(१) पं, भगवान् लाल इन्द्रजीकी प्रकाशित आठवीं शिलालिपि।

(2) wright's History of Nepal, and Ind. Ant. 1884. P. 413

(3) Indian Antiquary 1881, P. 424.

इसकेही अनुगामी होकर डाक्टर फ्लिट साहबने भी अंशुवर्म्माके समयमें खुदी-हुई शिलालिपियोंके अङ्क श्रीहर्ष सम्वत् ज्ञापक लिखे हैं।

अब प्रश्न यह है कि, सम्राट् हर्षदेव क्या नैपालमें गये थे ? और वहां जाकर क्या उन्होंने अपना सम्वत् चलाया था ? इस विषयमें कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। वाणभट्टके हर्षचरित, चीनपरिव्राजक हिउयन सियाङ्गके भ्रमण वृत्तान्त, मतोयान--लिनके विवरण और राजा हर्षवर्द्धनकी लिपियोंमें जो उसने स्वयम् खुदवाई थीं, हर्षके द्वारा नैपाल विजय और हर्ष सम्वत प्रचारकी कोई वात कहीं नहीं लिखी। इस वातका अब तक कोई प्रमाण नहीं मिलता कि, किसी समय हर्षदेवने नैपालको जीताथा अतएव हर्षदेवका नैपालमें जाकर अपना सम्वत् चलाना निरा गप्पही है।

यदि हम अंशुवर्म्माकी खुदवाईहुई लिपिके अंकोंको श्रीहर्ष सम्वत् सूचक मानलें तो सामयिक वर्णनके साथ विरोध होता है। अंशुवर्म्माके प्रसंगमें जो--३४--३९--४४ या--४५--अङ्कोंके चिन्ह हैं, उनको श्रीहर्ष सम्वत्के अङ्क मानलें तो सन् ६४० से सन् ६५१ ईसवी होते हैं। किन्तु हिउयन सियाङ्ग सन् ६३७ ईसवीकी ५ फरवरीको नैपालमें गया था। (१) उसने नैपालको देखकर लिखाथा कि, " अंशुवर्म्मा नामक यहां भी एक राजा था, जो स्वयं विद्वान् था और विद्वानोंका आदर भी करता था। उसने आपभी शब्दविद्याके संबंधमें पुस्तक बनाई थीं, नैपालमें उसकी कीर्त्ति फैली हुई है (२)।"

चीनी संन्यासीके उक्त विवरणको पढ़कर उपरोक्त पंडितोंने निश्चय किया है कि, चीनी संन्यासी नैपालमें गयाही नहीं। वृजिकी राजधानी तक गया था और वहां लोगोंसे जो कुछ सुना वही लिखदिया है। क्योंकि उससमय तक अंशुवर्म्माकी मृत्यु नहीं हुई थी।

उक्त समालोचना ठीक नहीं है। क्योंकि, " जिस-पुरुषका यश नैपालमें सर्वत्र फैला हुआहो, " उसकी मृत्युका समाचार जाननेमें भूल होना असम्भव है। चीनी संन्यासीने अंशुवर्म्माके बनाये ग्रंथोंकाभी परिचय दिया है। अतएव उसकी वातको निर्मूल नहीं समझ सकते। निःसन्देह चीनी संन्यासीके नैपाल जानेसे पहिलेही अंशु-

(1) Cunninghams Ancient geography of India.

(2) Beab's Records of Western World, Vol, II P. 81.

वर्म्माकी मृत्यु होगई थी। इस कारण अंशुवर्म्माकी खोदित लिपिके अङ्कोंको श्रीहर्ष सम्वत्‌के अङ्क नहीं मानसकते। उनको गुप्त सम्वत्‌के अङ्क मानसकते हैं। इसके माननेका दूसरा कारण है।

"गुप्त सम्राटोंके संग लिच्छविराजगणका घनिष्ट सम्बन्ध था, इसमें कुछभी संदेह नहीं है। डाक्टर फ्लिटने स्पष्टही लिख दिया है कि, गुप्त सम्वतही यथार्थमें लिच्छवि सम्वत् है। आदि गुप्त राजाओंने लिच्छवि राजवंशसे इस सम्वत्‌को ग्रहण किया था, इस बातमें कुछभी तर्क नहीं उठ सकता। हम जानते हैं कि, लिच्छिविराजगणमें साधारण तंत्र विलुप्त और राजतंत्रके आरंभसे अथवा पहिले जयदेवके राज्यारंभसेही उक्त सम्वत् आरंभ हुआ है (१)"

यद्यपि गुप्तराजने लिच्छवि वंशके साथ सम्बंधसूत्रमें बंधनेसे अपना गौरव समझा तथापि लिच्छविराजके सम्वत्‌को उनका ग्रहण करलेना अनुमानही मात्रहै, प्रामाणिक बात नहीं। परन्तु यह बात संभव जान पडतीहै कि, लिच्छविलोग गुप्त संवत्‌का व्यवहार करतेथे।

पार्वतीयवंशावलीमें अंशुवर्म्मासे कुछ पहिले विक्रमादित्यके नैपाल आनेका जो प्रसंग है, उसको सम्पूर्णतः अलीक नहीं कहा जासकता।

भारतवर्षमें कई विक्रमादित्योंने राज्य किया था। उनमेंसे जो नैपाल गये थे

(1) "And no objection could be taken by the early Gupta Kings to the adoption of the era of a royal house, in their connection with which they took special pride, I think, therefore, that in all probability the so called Gupta era is Lichchavi era dating either from a time when the republican or tribal constitution of the Lichchavis was abolished in favour of a monarchy; or from the commencement of the reign of Jayadeva I., as the founder of a royal house in a branch of the tribe that had settled in Nepal." (Fleet's carpus Inscriptionum Indicarum, Vol. III. Intro. P. 136.)

वह गुप्त सम्वत्के चलानेवाले प्रथम गुप्त सम्राट् हुए। उनका नाम चन्द्रगुप्तविक्रमादित्य था। उन्होंने (नैपालके) लिच्छविराजकी कन्या कुमारदेवीका पाणिग्रहण किया, इस सम्वंधसे गुप्त सम्राट्ने अपनेको विशेष संमानित समझा. कदाचित् इसही कारणसे उसके सिक्केमें " लिच्छवय " यह गौरवस्पर्शीशब्द छपा हुआथा। उक्त लिच्छविराजकी बेटी कुमारदेवीके गर्भसेही गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्तने जन्म लिया।

इस गुप्तसम्राट्ने अपने वाहुवलसे नैपालके समस्त सामन्त राजाओंको अपने वशमें किया था, यह वात इलाहवादवाली लिपिसे (जो समुद्रगुप्तनेही वनवाईथी) स्पष्ट विदित है। किन्तु नैपालके लिच्छविराजाओंने किस समय गुप्तराजाओंको पराजित किया था, इस वातका अवतक कोई प्रमाणभी नहीं मिला. इससे ज्ञात होताहै कि, समुद्रगुप्तके पिता और लिच्छविराजकें जांमाता चन्द्रगुप्तविक्रमादित्यसे नैपालमें (गुप्त) सम्वत् चलाथा, पार्वतीयवंशावलीमें इसकाही कुछ २ आभास पाया जाताहै।

इस वंशावलीमें लिखाहै कि, ' अंशुवर्म्माके श्वशुर विश्वदेव जव नैपालमें राजाथे उस समय विक्रमादित्यने नैपाल जाकर अपना सम्वत् चलाया था। इस अंशको इस प्रकार पढनेसे कोई ऐतिहासिक झंझट नहीं रहता।

"चन्द्रगुप्तविक्रमादित्यके श्वसुर वृषदेव (?) जव नैपालके राजाथे (अंशुवर्म्माको तवभी ऊंचा राजपद नहीं मिलाथा) उस समय चन्द्रगुप्तविक्रमादित्यने नैपाल जाकर कुमारदेवीका पाणिग्रहण किया, और अपना सम्वत् चलाया। "

प्रथम गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने सन् ३१९–२० ई० से सन् ३४७–४८ ईसवतिक राज्य किया। अतएव इसही समय वह नैपालमें गये होंगे। लिच्छविराजमानदेवकी शिलालिपिसे जाना जासकताहै कि, वह शाके ३३६ (सन् ४६४ ईसवीमें) राज्य करतेथे। वृषदेव उनके परदादा थे। तीन पुरुषोंमें एक शताब्दीका समय रखनेसे, जिस समय नैपालमें गुप्तसम्राट् आयेथे, उस समयमेंही हम वृषदेवको लिच्छविराज्यकी गद्दीपर विराजमान देखतेहैं। इससे ज्ञात होताहै कि, पार्वतीय वंशावलीके रचयिताने भूलसे वृषदेवकी जगह विश्वदेव, पाट रखदिया होगा।

वृषदेवके पीछे ३५ गुप्त सम्वत्में अर्थात् सन् ३५४–५ ईसवीमें महासामन्त अंशुवर्म्माका उदय हुआ। पंडित भगवान्लाल आदि उपरोक्त विद्वानोंने लिखाहै कि, पहिले २ वह राजाकी उपाधिको पानेके लिये अत्यन्त उत्कंठितथा।

४८ वें अङ्कसे वह 'महाराजाधिराज' की उपाधिसे भूषित हुआ है, किन्तु हमारा विश्वास है कि, वह अपनी इच्छासे राज्योपाधि पानेके लिये नहीं ललचाया।

यद्यपि वह शौर्य्य वीर्य्य पराक्रम और विद्याबुद्धिमें प्रधान गिनाजाता था तथापि उसने लिच्छविराजाओंका तिरस्कार करके कभी राज्योपाधि पानेकी इच्छा नहीं की। उसने स्वयं जो शिलालिपि खुदवाई उसमें राज्योपाधि नहीं है। वह महासामन्त उपाधिसे सन्तुष्ट था। पहिले शिवदेवकी शिलालिपिसे जानाजाताहै कि, लिच्छविराजने महासामन्त अंशुवर्म्माके पराक्रमसे अपनी राजलक्ष्मीकी रक्षा की थी। सम्भव है कि, जिस समय वह अपना राज मन्दिर छोडकर दूरदेशमें युद्धकरनेके लिये गयेथे, उसही समय वह ४८ अंकवाली जिष्णुगुप्तकी लिपि बनाई गई होगी।

पुराने और नये भारतीय सामन्तगण अपने २ अधिकारमें राजा उपाधिसे भूषित देखे जातेहैं और यहभी असंभव नहीं है कि, महासामन्त अंशुवर्म्माभी वैसेही अपने अधिकारमें जिष्णुगुप्त इत्यादि अधीनके मनुष्योंद्वारा राजाधिराज नामसे विख्यात हुआ हो और ऐसी राजोपाधि देखकर लिच्छविराजाओंकी अधीनताको छोडकर उसका एक स्वाधीन राजा बनजानाभी यथार्थ नहीं ज्ञात होता। जैसे नेपालके अधीनमें राजोपाधिधारी अबभी बहुतसे सामन्तहैं लिच्छविराजाओंके समयमें भी वैसेही थे तथापि यह सम्भव होसक्ताहै कि, अंशुवर्म्माने सर्व प्रधान सामन्तपद पायकर फिर लिच्छविराजाओंसे राजोचित महासन्मान पाया हो।

उसके ऐश्वर्य्यकालमें ध्रुवदेव लिच्छविराजधानी मानगृहमें विराजमान था और गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्तने सब भारतवर्षमें अपना अधिकार फैलाया था। जैसे मालव राज महासेन गुप्तकी बहिन महासेन गुप्ताके संग स्थाण्वीश्वराधिप आदित्यवर्द्धनका विवाह हुआ (१) कदाचित वैसेही समुद्र गुप्तके पुत्र दूसरे चन्द्रगुप्त विक्रमाङ्कके संग ध्रुवदेवकी भगिनी ध्रुवदेवीका विवाह हुआ होता (२)

ध्रुवदेव ४६ (गुप्त) सम्वत्में अर्थात् सन् ३६७-८ ईसवीमें राजसिंहासनपर विराजमान था। किन्तु उसने कितने दिनतक राज्य किया था, इस बातका ठीक २

(1) Epigraphica Indica, Vol. I. P. 68, 73.

(२) दूसरे चन्द्रगुप्तविक्रमादित्यने सन् ४००-४१३ ई०में राज्य किया। ज्ञात होता है कि राज्याभिषेकके बहुत पहिले उसके संग ध्रुवदेवीका विवाह होगया था।

पता नहीं लगता । उसके समयमें खुदीहुई जिष्णुगुप्तकी शिलालिपिको देख कर कोई २ समझतेहैं कि, उक्त सम्वत्से पहिलेही महासामन्त अंशुवर्माकी मृत्यु होगई थी, किन्तु वास्तवमें उस समयतक उसकी मृत्यु नहीं हुई थी । ३१६ (शक) सम्वत्में अर्थात् सन् ३८४ ईसवीमें वह विद्यमान था, यह बात वेन्डल साहबकी प्रकाशित लिच्छविराज शिवदेवकी शिलालिपिसे जानीजाती है ।

महासामन्त अंशुवर्म्मा ध्रुवदेव और शिवदेव दोनोंकेही राज्यकालमें विद्यमान था । उसके यत्नसे नैपालकी बडी उन्नति हुई थी । इस समयमें नैपालके लिच्छविराजा-लोग बौद्ध और सनातन धर्मियोंको समान भावसे देखते थे । अंशुवर्म्माके समयकी शिलालिपिसे जानाजाताहै कि, वह जैसी भक्ति हिन्दूधर्म्ममें करतेथे, वैसीही बौद्धोंमें रखतेथे, ऐसा ज्ञात होताहै कि, नैपालमें गुप्त सम्वत् बहुत दिन तक नहीं रहे । क्योंकि शिवदेवके समयसे फिर पहिले चलेहुए (शक) सम्वत्का प्रचार देखाजाताहै ।

ध्रुवदेव और शिवदेवके पीछे समयानुसार फिर मानदेवका नाम मिलताहै । यह तो नहीं कहसकते कि, उसके साथ ध्रुवदेव और शिवदेवका कुछ सम्बंध था, किन्तु शिलालिपियोंसे केवल इतना ज्ञात होताहै कि, वह सबही लिच्छविवंशके थे शिव-देवके पीछे धर्मदेव और उसके पीछे उसका पुत्र मानदेव राजा हुआ ।

मानदेवने ३८६ से लेकर ४१३ शक (सन् ४६४ से ४८१ ईसवी) तक अटल राज्य किया । वह अत्यन्त मातृभक्त और महावीर गिना जाताथा । उसके समयमें महासामन्त अंशुवर्म्माके वंशवाले ठांकुरीराजाओंने लिच्छविराजकी अधीनता न मानकर स्वाधीनता प्राप्त करनेकी चेष्टा की थी। मानदेवके शिलापट्टमें लिखा हुआहै कि, (१) उसने पहिले पूर्वकी ओर यात्रा की, वहांके समस्त सामन्तोंको वशीभूत

---

(१) प्रायात् पूर्वपथेन तत्र च शठा ये पूर्वदेशाश्रयाः
सामन्ताः प्रणिपातवन्धुरशिरःप्रभ्रष्टमौलिस्रजः ।
तानाज्ञावशवर्त्तिनो नरपतिः संस्थाप्य तस्मात् पुनः
निर्भीसिंह इवाकुलोत्कटसटः पश्चाद्भवञ्जग्मिवान् ॥
सामन्तस्य च तत्र दुष्टचरितं श्रुत्वा शिरः कम्पयन्
वाहुं हस्तिकरोपमं स शनकैः स्पृष्ट्वाब्रवीद्गर्वितम् ।

करके राजा (मानदेव) निडर सिंहके समान पश्चिम देशोंकी ओर बढा। वहांके सामन्तका बुरा व्यवहार सुनकर उसने बडे गर्वसे कहाथा कि, यदि वह मेरी आज्ञामें नहीं चलेगा तो (निश्चयही) मेरे विक्रम प्रभावसे पराजित होगा। (१) उक्त पश्चिमवासी सामन्त कदाचित् महासामन्त अंशुवर्म्माके वंशका ही कोई होगा।

इस मानदेवके राज्यकालमें जयवर्म्मा नामक एक पुरुषने वर्त्तमान पशुपतिनाथके मन्दिरमें जयेश्वरनामक लिङ्ग स्थापन किया था। वह लिङ्ग नष्ट होगया उस स्थानमें अब मानदेवके पिता शंकरदेवका स्थापित किया हुआ १४ हाथ ऊंचा एक त्रिशूल विद्यमान है।

मानदेवके पीछे उसका पुत्र महीदेव सिंहासन पर बैठा। उसके समयका कुछ वृत्तान्त नहीं मिलता। फिर वसन्तदेवने पिताका राज्य पाया। ४३५ (शक) सम्वत् (सन् ५१३ ईसवी) में इसके समयकी खुदीहुई लिपि पाईगई है। दूसरे जयदेवकी शिलालिपिमें लिखाहै कि, यह एक बडा वीर था, विजितसामन्तलोग इसकी वन्दना करते थे।

संभवहै कि, इस वसन्तदेवके समयमें ही आर्यावलोकितेश्वरका प्रभाव नैपाल मार्गमें फैलाथा। पार्वतीयवंशावलीमें लिखाहै कि, ' ३६२३ कलिगताव्दमें अवलोकितेश्वर नैपालमें उदय हुए (२) '

ऊपर लिखचुके हैं कि, पंडित भगवान्‌लाल इत्यादि महाशयोंने इस वातको स्वीकार कियाहै कि, पार्वतीय वंशावलीमें बहुतसा अनैतिहासिक विषय रहने परभी उसमें ऐतिहासिक वातोंका अभाव नहीं है। अवलोकितेश्वरके विषयमें हमने जो कुछ आगे लिखाहै संभवहै कि, उसमें कुछ सत्यभी हो।

ज्ञात होताहै कि, ३६२३ कल्याव्दमें अर्थात् सन् ५२२ ईसवीमें वसन्तदेवने सब सामन्तोंको भलीभांति वशमें करके नैपालमें अवलोकितेश्वरकी पूजा और प्रधानताका

--आहूतो यदि नैति विक्रमवशादेष्यत्यसौ मे वशं
किं वाक्यैर्बहुभिर्विधातृगदितैः संक्षेपतः कथ्यते ॥ "
(मानदेवकी लिपि ३८६ (शक) संवत्)

(१) दुःखकी वातहै कि, आगेके श्लोक नष्ट होजानेसे उस सामन्तका नाम नहीं पायागया।

(२) " अतीतकलिवर्षेषु शून्यद्वन्द्वरसाग्निषु।
नेपाले जयति श्रीमान् आर्य्यावलोकितेश्वरः॥ "

प्रचार किया। उस समयसेही अबतक अवलोकितेश्वर या मत्स्येन्द्रनाथ नैपालके अधिष्ठातृदेवता समझकर माने और पूजे जाते हैं।

वसन्तदेवसे पीछे हुए दूसरे शिवदेव और दूसरे जयदेवकी शिलालिपिमें जो सम्वत् पडे हैं, हमारी समझमें वह उक्त अवलोकितेश्वरकी सार्वजनिक पूजा प्रकाश और राजा वसन्तसेनके द्वारा सार्वभौम राजा कहलानेके समयसे गिने जाते हैं।

वसन्तदेवके पीछे उसका पुत्र उदयदेव राजा हुआ। डाक्टर फ्लिटके मतसे उदयदेव लिच्छविवंशका नहीं, वरन ठाकुरीवंश अर्थात् अंशुवर्म्माके वंशका था। दूसरे जयदेवकी शिलालिपिमें उदयदेवसे पहिले जिन राजालोगोंकी वंशावली लिखी है, वह लिच्छवि वंशके हैं तथापि फ्लिटके मतसे उदयदेवसे ही ठाकुरीवंशका वर्णन आरंभ हुआहै। किन्तु मूल शिलालिपिके (१) पढनेसे उदयदेव लिच्छविवंशीय वसन्तदेवका पुत्रही जानाजाताहै। उदयदेवके पीछे कौन राजा हुआ सो शिलालिपिसे स्पष्ट ज्ञात नहीं होता। किन्तु उससे आगेको नरेन्द्रदेवका वृत्तान्त साफ २ पाया जाताहै।

इन नरेन्द्रदेवके पराक्रमकी बातें दूसरे जयदेवकी शिलालिपिमें विशेषरूपसे लिखी हैं। संभव है कि, इसके ही पराक्रमसे कान्यकुब्जके महाराज हर्षवर्द्धन नैपाल जीत-

---

(१) मूल श्लोक यह है--

"श्रीमान् बभूव वृषदेव इति प्रतीतो राजोत्तमः सुगतशासनपक्षपाती।
अभूत्ततः शङ्करदेव नामा श्रीधर्मदेवोप्युदपादि तस्मात्॥
श्रीमानदेवो नृपतिस्ततोऽभूत्ततो महीदेव इति प्रसिद्धः।
आसीद्वसन्तदेवोस्माद्दान्तसामन्तवन्दितः॥
०००० अस्यान्तरेप्युदयदेवइतिक्षितीशाज्जात०००स्ततश्चनरेन्द्रदेवः॥
मानोन्नतो नतसमस्तनरेन्द्रमौलिमालारजोनिकरपांसुलपादपीठः॥"

(दूसरे जयदेवकी लिपि।)

उक्त श्लोकमें "अस्यान्तरे" ऐसाहोनेसे डाक्टर फ्लिटने उदयदेवसे भिन्नवंशकी कल्पना की है। किन्तु पहिले श्लोकमें 'ततः' और 'अभूत्' पदसे पुत्रपरम्परा निर्णीत होनेके कारण इस स्थानमें भी "अस्यान्तरे अभूत्" ऐसा अन्वय करना चाहिये। यहां भी उदयदेवको वसन्तदेवका पुत्र कहकर निर्देश करनेके निमित्तही, पहिले श्लोकके समान "अस्यान्तरे" अर्थात् इस (वसन्तदेवके) पीछे ऐसा लिखा गया है इसमें कुछ सन्देह नहीं होसकता।

नेको समर्थ नहीं हुएथे । इसके राज्यकालमें चीनी संन्यासी हिओनसाङ्ग कुछ दिनके लिये नैपालमें गयाथा । चीनी संन्यासीने लिखा है कि,-

"मै बहुतसे पर्वतोंको लांघता व उपत्यकाओंमें होता हुआ नेपाल देशमें आया। यह देश तुषारमय पर्वतमालासे घिरा हुआ है । पर्वत और उपत्यकाका पर्त बराबर लगा हुआ पाया जाता है।" इस प्रकारसे देशकी सुन्दरता और सर्वसाधारणकी दशाका वर्णन करनेके पीछे उसने लिखाहै कि, "यहां विश्वासी और अविश्वासी (अर्थात् बौद्ध और हिन्दू) दोनों सम्प्रदाय एक साथ रहते हैं। संघाराम और देव मन्दिरोंके बहुत निकट बने रहनेसे वहां महायान और हीनयान मतावलम्बी२ ००० श्रमण रहते हैं। राजा क्षत्रिय और लिच्छविवंशीय हैं। वह विद्वान् निर्मल चरित्र और उदार हैं। बौद्ध धर्म्ममें उनको बडाभारी विश्वास है।" इत्यादि ।

चीनी संन्यासीने जिस लिच्छविराजका वर्णन किया है संभव है कि, वह नरेन्द्रदेव हों । नरेन्द्रदेवके विषयमें नैपाली बौद्धोंमें अब भी बहुतसी कहावतें नैपालियोंमें प्रचलितहैं। दूसरे जयदेवकी शिलालिपिसे जाना जाताहै कि, नरेन्द्रदेवके पहिलेसे ही लिच्छविराजगण बौद्धशासनके पक्षपाती होगयेथे (१.)

नरेन्द्रदेवके पीछे उसका पुत्र दूसरा शिवदेव सिंहासनपर बैठा। मगधराज आदित्यसेनकी धेवती और मोखरी राज भोगवर्म्माकी कन्या वत्सदेवीके संग शिवदेवका विवाह हुआ । इसके समयकी शिलालिपिमें १४३, १४५ और १४९ अनिर्दिष्ट सम्वत् अङ्कितहै (२) अतएव अनुमान होता है कि, यह सन् ६६५ से ६७१ ईस-

(१) "श्रीमान् बभूव नृपदेव इति प्रतीतो राजोत्तमः सुगतशासनपक्षपाती ॥"
(जयदेवकी लिपिका आठवाँ श्लोक)

(२) पंडित भगवानलाल और डाक्टरफ्लिट आदि प्राचीन तत्त्ववेत्ता लोगोंने पूर्व वर्णित ध्रुवदेव और अंशुवर्म्माकी लिपिके अंकोंको जैसे श्रीहर्ष सम्वत्का अंक माना है वैसेही आगेके दूसरे शिवदेव और दूसरे जयदेवकी लिपिके अंकोंको भी श्रीहर्ष सम्वत्का अङ्क समझा है । किन्तु पहिलेके समान पिछले अङ्कोंकोभी श्रीहर्ष सम्वत्के अंकमाननेमें बखेडा पड़ता है । ऊपर लिखचुके हैं कि, नैपालमें हर्ष सम्वत् कब चला, इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं, इसही कारण पिछले कहे दोनों राजालोगोंकी शिलालिपियोंमें खुदे अङ्कोंको किसी विशेष सम्वत्के नामसे ग्रहण किया गया है। इस विषयमें अबभी बहुत छान बीनकी आवश्यकता है ।

वीके किसी समयमें राज्यकरताथा। फिर उसका पुत्र दूसरा जयदेव लिच्छवि सिंहासनपर शोभायमान हुआ।

इसका दूसरा नाम परचक्रकाम है। इसके समयकी १५९ संवत्वाली शिलालिपिसे जानाजाता है कि, इसने गौड, उड्र, कलिङ्ग और कोशलाधिप हर्षदेवकी कन्या राज्यमतीके संग विवाह कियाथा। इस हर्षदेवको ही पहिले हमने हर्षवर्द्धन समझाथा। किन्तु अब ज्ञात हुआ कि, यह कन्नोजराज हर्षवर्द्धन नहीं है। जिस वंशमें कामरूपके राजा कुमारभास्करवर्म्माने जन्म लियाथा, दूसरे जयदेवके श्वशुर हर्षदेवनेभी उसही वंशको उज्ज्वल कियाथा। आसामसे निकले हुए ताम्रलेखोंके पढ़नेसे जानाजाता है कि, यह कुमार भास्करवर्म्माका पुत्र अथवा पौत्र था। तेजपुरके ताम्र लेखमें यह (हरिष) नामसे विख्यात हुआ है।

पार्वतीय वंशावलीमें शङ्करदेवसे चार पीढी पीछे, गुणकाम नामक राजाका नाम पायाजाता है। वंशावलीके मतसे सन् ७२३ ईसवीमें उसने काठमांडूनगर बसाया। परचक्रकाम और गुणकाम यदि एकही पुरुषकी उपाधि हो तो दूसरे जयदेवको सन् ७२३ ईसवी तक नैपालके राजसिंहासनपर विराजमान देखाजाता है।

दूसरे जयदेवके पीछे, कोई ढाईसौ वर्षका सम्पूर्ण इतिहास अन्धकारमें छिपा हुआ है। नैपालके इतने समयका इतिहास अभीतक विश्वास योग्य नहीं मिला है। नैपालके राजा राघवदेवने सन् ८७९ ईसवीमें २० अक्टूबरको एक नया सम्वत् चलाया था। जो नैपाली सम्वत्के नामसे विख्यात है फिर वेन्डल साहबने बडे परिश्रमसे और अनुसन्धानके द्वारा प्राचीन पोथियोंसे जो सूची संग्रह करके तैयार कीहै, नीचे उसहीकी लिपि प्रकाश की जाती है—

राजाका नाम		पोथीमें पाया हुआ समय,	राजधानी.
निर्भयरुद्र...	...	सन् १००८ इसवी.	
भोजरुद्र ...	...	सन् १०१५ ईसवी।	
लक्ष्मीकाम	...	सन् १०१५--१०३९ ई०	
जयदेव ...	...		काठमाण्डू।
उदय ...	...		,,
भास्कर ...	...		पाटन।
बालदेव ...	...		

प्रद्युम्न कामदेव ...	सन् १०६५ ईसवी ।	
नागार्जुनदेव ...		
शंकरदेव... ...	सन् १०७१--१०७२ ई०	
वाणदेव	सन् १०८३ ईसवी ।	
रामहर्पदेव ...	सन् १०९३ ईसवी ।	
सदाशिवदेव ...		
इन्द्रदेव		
मानदेव	सन् ११३९ ईसवी ।	
नरेन्द्र	सन् ११४१ ईसवी ।	
आनन्द... ...	सन् ११६५--११६६ ई० ।	
रुद्रदेव		
मित्र या अमृत...		
अरिदेव... ...		
रणसूर	सन् ११२२ ? ईसवी ।	
सोमेश्वर, राजकाम, अन्यमल्ल }		
अभयमल्ल ...	सन् १२२४ ईसवी ।	
जयदेव	सन् १२५७ ई०	भातगांव ।
अनन्त मल्ल + ...	सन् १२८६--१३०२ ई० ।	काठमाण्डू ।
जयार्जुनमल्ल ...	सन् १३६४--१३८४ ई०	
जयस्थितिमल्ल ...	सन् १३८५--१३९२ ई०	
रत्नज्योतिमल्ल ...	सन् १३९२ ई०	
जयधर्ममल्ल ...	सन् १४०३ ई०	
जयज्योतिर्मल्ल ...	सन् १४१२ ई०	काठमाण्डू ।
यक्षमल्ल ...	सन् १४२९--१४५७ ई०	

+ इसके पीछे ६० वर्षतक किस २ राजाने राज्य किया सो नाम न मिलनेसे नहीं जानाजाता.

यक्षमल्लसे पीछे उसकी सन्तानके पाससे नैपालका राज्य दो अंगोंमें बँटगया। एक अंशकी राजधानी **भातगांव** और दूसरेकी राजधानी **काठमाण्डू** हुई। राज-वंशावली और उसके समयकी शिलालिपि तथा सिक्कोंसे जितने वर्ष पाये गये हैं सो नीचे लिखे जाते हैं—

यक्षमल्ल। (सन् १४६० ईसवीके लगभग)

भातगांव। — काठमांडू।

भातगांव:
राय (या) राम।
सुवर्ण (भुवन)
प्राण।
विश्व।
त्रैलोक्य (सन् १७५२ ई०)
जगज्ज्योतिः (सन् १६२८--१६३३ ई०)
नरेन्द्र।
जगत्प्रकाश (सन् १६४२--१६६७ ई०)
जितामित्र (सन् १६६३ ई० की मुद्रामें)
भूपतीन्द्र (सन् १६८५--सन् १७१० ई०)

काठमांडू:
रत्न।
अमर।
सूर्य।
नरेन्द्र।
महीन्द्र।
सदाशिव (सन् १५७६ ई०)
शिवसिंह (सन् १६०० ई०)

काठमाण्डूमें — (पाटनमें)

(पाटनमें): लक्ष्मीनारायणसिंह सिद्धिनरसिंह (सन् १६३१--१६५४ ई०)

प्रताप श्रीनिवास(सन् १६६५--१६७८ई०)

जयचन्द्र महेन्द्र

रणजीत मल्ल (सन् १७२२-१७५४ ई० | योगनरेन्द्र(स १६८६ स. १७०१ ई०)

जयनृपेन्द्र ।

| लोकप्रकाशस१७०५ई० फिर रानीयोगमती

भूपालेन्द्र ।

भास्कर

काठमाण्डू महीन्द्रसिंह (स. १७०९ सन् १७१५ ई०)

पाटन ।

जगजय महीपतीन्द्र (स.१७२२–१७२८ ई०) योगीन्द्र प्रकाश(स.१७२२ई०)

जयप्रकाश (स. १७३६ १७५४ ई०) विष्णु (स. १७२९-१७३१ ई०)

ज्योतिप्रकाश (१७४९ ई०) विश्वजित् ।

दलमर्दन शाह ।

तेज नरसिंह ।
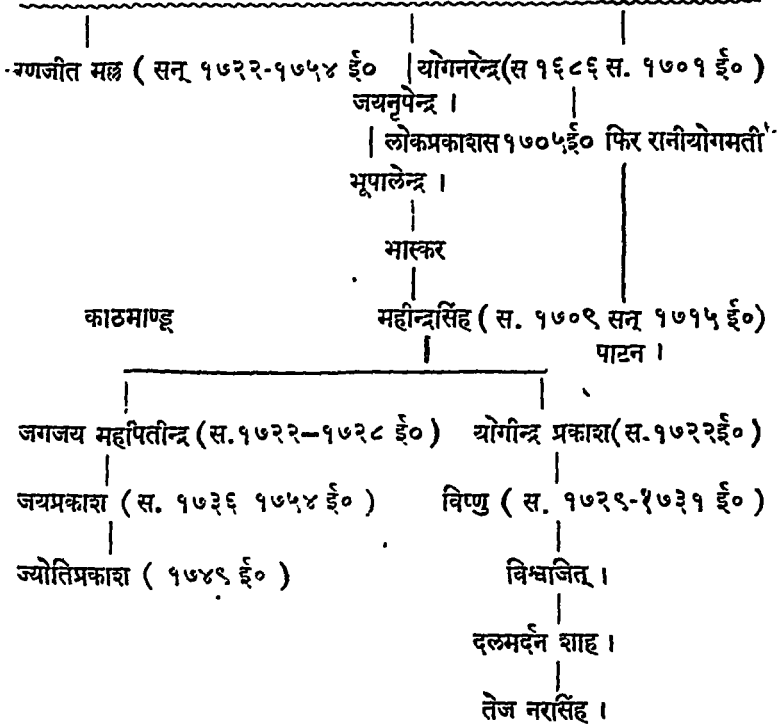
इसके पीछेही नैपालमें गोर्खोंका राज्य हुआ । ऊपर कहे राजा लोगोंके संबन्धमें जैसा संक्षिप्त इतिहास पाया गया है, बहुत संक्षेपसे वही ऊपर लिखा है ।

सन् ईसवीकी ग्यारहवीं शताब्दीमें जब मुसलमानोंने भारत वर्षपर आक्रमण किया था, उसके पहलेहीसे भारतका पश्चिमोत्तर प्रदेश छोटे २ खण्ड राज्योंमें विभक्त था और यह राजा लोग ईर्षावश हो परस्पर युद्ध विग्रहमें लिप्त रहकर धन और सेनाके क्षय होनेसे दिन २ दुर्बल होते जाते थे । ऐसे समय उन्होंने घरके शत्रुओंसे रक्षापाने तथा स्वदेशमें अपनी मान मर्य्यादा और सामर्थ्यको प्रतिष्ठित करनेके निमित्त बाहर देशके शत्रुओंको अपने हृदयमें आसन दिया । इसका यह फल हुआ कि, मुसलमानोंने भारतवासियोंके बुलाने और विशेष सत्कार करनेसे इस देशमें अपना अधिकार जमाया । यद्यपि मुसलमानोंने बन्धुभावसे भारतमें पैर रक्खा था, किन्तु उनकी तीक्ष्ण दृष्टिको भारतकी भीतरी दशा सहजमें ही ज्ञात होगई

थी, समय पातेही मित्रताके वदलेमें उन्होंने भारतको अपने पूरे अधिकारमें कर लिया। नैपालमें भी एक दिन यही दशा हुई थी।

सन् १३२२ ईसवीमें सूर्यवंशी अयोध्या नरेश राजा हारीसिंह देवपर दिल्लीके मुसलमान सम्राटने चढाई की, उन्होंने अयोध्यासे भागकर मिथिलाकी राजधानी सिमराओं गढमें दल सहित आकर रक्षा पाई। ४४४ नैपाली सम्वत् (सन १३२४ ई०) में दिल्लीश्वर तुगलक शाहने फिर इनको घेर लिया, सिमराओं गढमें उन्होंने शत्रुओंसे विषम युद्ध किया, परन्तु अन्तमें पराजित होकर भागे और नैपालमें जा वसे। उस समय नैपालमें वर्मवंशीय राजालोग राज्य करते थे। राजा हारीसिंहने जव देखा कि, अव यहांके राजामें पहिलासा तज नहीं है। तव नैपाल राज्यको अपने अधिकारमें लेलिया। कहते हैं कि, राजा हारीसिंहके राज्यमें यवनोंका उत्पात देखकर देवी तुलजा भवानीने राजाको यह आज्ञा दी कि, तुम मुसलमानोंके छुए हुए राज्यको छोड नैपालके ऊंचे स्थानमें जाय अपना राज्यस्थापन करो। देवीकी आज्ञानुसार राजा नैपालमें गये, उस काल वहां भातगांवके ठाकुरी राजगण और अधिवासी लोगोंने देवीकी आज्ञा सुनकर नैपालका राज्य हारीसिंहके हाथमें सौंपदिया।

राज्य पातेही उन्होंने तुलजादेवीके स्मरणार्थ एक मन्दिर वनवाया. इस मन्दिरका नाम भूलचौक है। भोटिया लोग तुलजादेवीका माहात्म्य सुनकर देवीजीकी मूर्तिको चुरानेके लिये भातगांओंकी ओर वढे और जव " सम्पुस " नदीके तटपर पहुँचे तो भोटियोंकी सेनाने देखा कि, भातगांओंके चारों ओर अग्नि जलरही है। देवीके यह अद्भुत शक्ति देखकर भोटियालोग भीत और विस्मित हो अपने अपने नगरको लौटगये।

सन् १३३७ ईसवीमें दिल्लीके वादशाह मोहम्मद तुगलकने चीन राज्यको हस्तगत करनेकी इच्छासे अपने वहनोई मलिक खुशरोको दश लाख घुडसवार सेनाके सङ्ग चीनपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी। वह सेना नैपालके वीचमें ही होकर गई थी। उस समय सेनाके अत्याचारसे नैपालवासियोंको विशेष दुःख भोगना पड़ा। मुसलमानोंकी सेना वड़े कष्टसे पहाडोंको लांघतीहुई नैपालकी आन्तिम सीमापर पहुँची, वहां चीनी सेनाके साथ उसका सामना हुआ और दोनों दलमें घनघोर युद्ध हुआ। एक तो शीतका प्रभाव, दूसरे उनके लिये वहाँका जल वायु ठीक न था. अतएव मुसलमानोंकी सेना दिन २ घटने लगी, अन्तमें वचे हुए सिपाही दिल्लीको भागे। सम्राट्ने जव उनके पराजित होकर भागनेका समाचार सुना, तव सवको मरवाडाला।

राजा हरिसिंह देवने २८ वर्षतक राज्य किया था। फिर उसका पुत्र मोतीसिंह देव १५ वर्ष और मोतीसिंह देवका पुत्र शक्तिसिंहदेव २२ वर्ष राज्य करता रहा। उसके सङ्ग चीन सम्राट्की विशेष मित्रता थी, इसलिये "वनेपा" (वणिकपुर) ग्रामके पूर्ववर्ती पलाम चौकमें अपनी राजधानी बनाई। वहांसे चीन राजसभामें अनेक प्रकारकी भेंट भेजी, उधरसे चीन सम्राट्ने उसके लिये चीन सम्वत् ५३५ का लिखा हुआ एक अनुमोदन पत्र और राजमोहर भेजी थी। फिर उसके पुत्र श्याम-सिंह देवने १५ वर्षतक राज्य किया। इसके कोई पुत्र नहीं था, अतएव अपनी इक-लौती कन्या और जामाताको राज्यसिंहासन पर बैठाया। राजा नान्यपदेवने जब नेपालपर चढ़ाई की तो यहांका मल्लवंशीय राजा त्रिहुतमें भागगया। उक्त मल्ल-वंशमें श्यामसिंह देवने अपनी कन्याको विवाह दिया। इस सम्बन्धसे नेपालमें दुवारा मल्लराजवंशकी प्रतिष्टा हुई। ५२८ नेपाल सम्वत्में नेपालमें भयानक भूकम्प हुआ, जिससे मत्स्येन्द्र नाथका मन्दिर और दूसरे बहुतसे मन्दिर भी गिरगये।

हरिसिंह देव वंशका राज्यकाल समाप्त होनेपर मल्लराज जयभद्रमल्लने सबसे पहिले नेपालका राजसिंहासन पाया। यह १५ वर्ष तक राज्य करके परलोक सिधारा। फिर उसका पुत्र नागमल्ल गद्दीपर बैठा। इसने १५ वर्ष तक राज्य करके अपने पुत्र जयजगतमल्लको राज्य दिया। जयजगतमल्लने १५ वर्ष तक राज्य करके अपने पुत्र नरेन्द्रमल्लके हाथमें प्रजापालनका भार सौंप दिया। राजा नगेन्द्रमल्लने १० वर्ष और उसके पुत्र उग्रमल्लने १५ वर्ष तक राज्य किया। पीछे उग्रमल्लका पुत्र अशोकमल्लराज हुआ। उसने विष्णुमती वाघमती और रुद्रमती नदियोंके मध्यवर्त्ती स्थानमें श्वेतकाली और रक्तकालीकी स्थापना करके उस स्थानको भी पुण्यभूमि काशी धामके अनुकरण पर उत्तरकाशी या काशीपुर नामसे विख्यात किया, राजा अशोकमल्लने अपने बाहुबलसे ठाकुरी राजालोगोंको पराजित करके उनकी राज-धानी पाटन नगरपर अधिकार किया।

उसके पुत्र जयस्थितिमल्लने राज्यासन पर बैठकर पुराने राजालोगोंकी नीति और विधिका भली भांतिसे संशोधन किया और कई एक नये नियम भी चलाये। इसके ही समयमें जातिमर्य्यादा स्थापित हुई। समाजशासन और कई एक धर्म सम्बन्धी नवीन प्रथाओंको प्रचलित करके वह सब साधारणका श्रद्धापात्र होगया था। आर्य्यतीर्थके दूसरी ओर वाघमतीके किनारे श्री रामचन्द्रजी व उनके पुत्र लवकुश और गोरक्षनाथकी मूर्ति पुनः प्रतिष्ठित कराई। ललित पाटनका कुम्भेश्वर

मन्दिर व दूसरे अनेक मन्दिर इसके ही प्रतिष्ठित हैं। इसके ४३ वर्ष राज्य करनेपर फिर इसका पुत्र राजा जयमल्ल गद्दी पर बैठा। जिसने शंकराचार्य्यकी धर्म्मशिक्षाका प्रचार किया और दक्षिणसे भट्ट ब्राह्मण बुलवाकर पशुपतिनाथकी पूजाका भार सौंपा। उस समयसे ही भारतवासी हिन्दू धर्म्मावलम्बी ब्राह्मणोंने यथार्थ सनातन मतके अनुसार देवपूजा चलाई। इसके राज्यकालमें धर्म्मराज मीननाथ लोकेश्वरका मन्दिर बना। इसमें समन्तभद्र,बोधिसत्व, पद्मपाणि, बोधसत्व और अन्यान्य बोधिसत्व व अनेक देव देवियोंकी मूर्त्तियें प्रतिष्ठित हैं। ५७३ नैपाल सम्वत्में इसमें एक किला बनवाया और इसकी रक्षाके लिये बहुतसे नियम चलाये। भातगांओंके तत्वपाल टोल ग्राममें दत्तात्रयका एक मंदिर निम्र्माण कराया. राजा गुणकामदेवकी प्रतिष्ठित लोकेश्वर देवकी मूर्त्ति ठाकुरी राजगणोंके समयमें यमला नामक स्थानके टूटे हुए मन्दिरके खंडहरमें पाईगई, इस देव मूर्त्तिका संस्कार कराके काठमाण्डूमें स्थापना करादी। अब यह मूर्त्ति यमलेश्वर नामसे विख्यातहै। इसने पाटन और काठमाण्डूके राजालोगोंको अपने आधिकारमें कर लियाथा।

राजा यक्षमल्लके तीन पुत्र और एक कन्या थी। उसने मृत्युसे पहिले बडे पुत्रको भातगांओं,दूसरे पुत्र रणमल्लको बनेपा,तीसरे पुत्र रत्नमल्लको काठमाण्डू और कन्याको पाटनका राज्य देदिया। किन्तु परस्पर विवाद बढजानेसे धीरे २ सबही हीनबल होगये। यद्यपि राजा यक्षमल्लने उपरोक्त प्रकारसे अपने राज्यका विभाग करदियाथा तथापि यथार्थ वंशधरके अभावसे या किसी अभावनीय कारणसे बनेपा और पाटन राज्य भातगांओं तथा काठमाण्डूके राजवंशको मिलगये इस कारणसे नैपालके इतिहासमें गोर्खा आक्रमणके पहिले उक्त दो राज्योंका कुछ २ इतिहास पायाजाताहै ५९२ नैपाल सम्वत्में उसकी मृत्युसे नैपालका राज्य इस प्रकार बँट गया। ज्येष्ठ पुत्र रायमल्ल भातगांओंमें पिताके सिंहासनपर बैठा। उस समय भातगांओंका राज्य पूर्व दूधकोशी तक फैला हुआ था पीछे इसके पुत्र प्राणमल्ल और प्राणके पुत्र विश्वमल्लने भातगांवम राज्य किया। विश्वमल्लने बहुतसे मठ और देवमन्दिर स्थापन किये। फिर इसके पुत्र त्रैलोक्यमल्ल और त्रैलोक्यमल्लके पुत्र जगज्योतिमल्लने राज्य कियाथा। इसने ही भातगांवके आदि भैरव देवताका रथयात्रा उत्सव चलायाथा। इसके परलोक सिधारने पर इसका पुत्र नरेन्द्रमल्ल राजा हुआ। अनन्तर नरेन्द्रमल्लका पुत्र जगत्प्रकाशमल्ल राजसिंहासनपर बैठा। इसने ७७५ नैपाल सम्वत्में बहुतसे कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित किये। तब पालटोल ग्राममें दारसिंह भारो और

वासिं भारो नामक दो सज्जनोंनें भीमसेनकी प्रतिष्ठाके लिये एक मन्दिर बनवायाथा। ७८२ नेपाली सम्वत्में उन्होंने विमलास्नेहमण्डप और ७८७ नेपाल सम्वत्में गरुडध्वज नामक एक स्तम्भ निर्माण कराया। इसके पुत्र राजा जितामित्रने ८०२ नेपाली सम्वत्में एक धर्म्मशाला नारायणमन्दिर और ८०३ नेपाली सम्वत्में दत्तात्रयेशका मन्दिर स्थापन किया। इसके पुत्र राजा भूपतीन्द्रमल्लके शासन कालमें नेपालके मध्य एक बहुत बडा दरबार और देवदेवियोंके मन्दिर प्रतिष्ठित हुए। इनने आप और पुत्र रणजीतकी सहायतासे ८३८ नेपाल सम्वत्में भैरव देवके मन्दिरमें सुवर्णकी छत्त बनवादी। रणजीतमल्लने पिताकी मृत्युके पीछे शासनभार ग्रहण करके अपनी कीर्तिका भलीभांतिसे प्रकाश किया। नेपाली सम्वत् ८५७ में इन महाराजने अन्नपूर्णादेवीके मन्दिरमें एक बडा भारी घंटा चढाया। इनके ही राज्य-कालमें भातगाओं ललितपाटन और कान्तिपुरके राजालोगोंमें परस्पर फूट बढी। गोर्खा राजा नरभूपालने उस समयके राजाओंको बलहीन देखकर नेपालपर चढाई की। जब वह त्रिशूलगंगाके पार होकर आया तो नवकोट शैवराज उनसे युद्ध करनेके लिये आगे बढे। इस युद्धमें गोर्खा राजा पराजित होकर अपने देशको लौट गये।

गोर्खा राजा नरभूपालका पुत्र राजा पृथ्वीनारायण रणजीतके शासनकालमें नेपाल देखनेको आया। रणजीतने उसका विनीत आचार व्यवहार देखकर अपने पुत्र वीर नृसिंहसे मित्रता करादी। किन्तु युवराज अकालमें ही इस असार संसारको छोड स्वर्ग सिधारा। इस कारण भातगाओंके सूर्य्यवंशीय राजालोगोंका वंश नष्ट होगया।

राजा यक्षमल्लने दूसरे पुत्र रणमल्लको वाणिकपुर (बनेपा) व दूसरे सातगांओंका अधिकार देदिया। उनकी अधिकार सीमा पूर्वमें दूधकोशी; पश्चिममें संगानामक स्थान; उत्तरमें संगाचौक और दक्षिणमें मेदिनामल कामक बनैली भूमितक फैली हुई थी। वाणिकपुरके किसी पुरुषने ६२२ नैपाल सम्वत्में पशुपतिनाथके मूल्यवान् कवच और एकमुखी मुद्रा उपहार देते समय राजाको भी एक शाल भेंट की थी। यह शाल अभीतक कान्तिपुर राजधानीमें रक्खी हुई है।

राजा यक्षमल्लके तीसरे पुत्र राजा रत्न या रतनमल्लने पिताके विभागानुसार काठमाण्डूका राज्य भार प्राप्त किया। इस राज्यकी पूर्व सीमामें वाघमती, पश्चिममें, नागगंगा, उत्तरमें गोसाईंथान और दक्षिणमें पाटन विभागकी उत्तर सीमा है। राजा रतनमल्लने

पिताके मरनेपर उनसे तुलजा देवीका वीजमन्त्र ग्रहण किया सुना है कि, इस मन्त्र वलसे उनके ऊपर सदा प्रसन्न रहती थी. इन महाराजके जितने वडे भ्राता थे वे अपने भ्रान्त विश्वासके कारण भाईकी होनहार उन्नतिसे कातर होकर दिन २ छोटे भ्राताके ऊपर क्रोधित होने लगे। इसका फल यह हुआ कि, परस्पर घोर शत्रुता होगई।

राजा रत्नमल्लको एक दिन स्वप्नमें नीलतारा देवीने आज्ञा दी कि, यदि तुम कान्तिपुरमें जासको तो काजी लोग निश्चयही तुमको राजा वनादेंगे। स्वप्न देख राजा सवेरेही उठे और देवीको प्रणाम करके ठाकुरी राजालोगोंके प्रधान काजी पर पहुंचे, काजीने राज्य देनेका वचन दिया और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये वारह ठाकुरी राजा लोगोंको नेवतेके वहानेसे अपने घर वुलाया और भोजनके संग विष देकर उनको मार डाला। रत्नमल्लने कान्तिपुरके सिंहासन पर वैठते ही उस काजीको मरवादिया स्वप्नकी वात मिथ्या मानलेने पर भी यह वात साफ है कि, उन्होंने भाइयोंके संग विवाद करके ही कान्तिपुरको अपने अधिकारमें किया था। रत्नमल्लने ६११ नेपाली सम्वत्में नवकोटके ठाकुरीलोगोंको पराजित करके उनके राज्य पर अधिकार करालिया। यहांसे उन्होंने अनेक फल फूल लेकर पशुपतिनाथकी पूजा की थी। इस कारण अवतक भी नवकोटसे द्रव्यादि लाकर उक्त देव मूर्तिकी पूजा की जाती है।

इनके राज्यकालमें कुलु नामक भोटिया जातिने विद्रोही होकर राजाके ऊपर विशेष अत्याचार किया राजाको भोटिया लोगोंके दमन करनेमें विफल मनोरथ देखकर देवधर्म्मा ग्रामवासी चार तिरहुती व्राह्मणोंने पाल्पाके सेन राजगणकी अधीनस्थ सेनाको लेकर रत्नमल्लकी सहायता की। जव इस कुकुस्यानाजोर नामक ग्राममें भोटिया लोग हारगये तो राजाने इन व्राह्मणोंको कई ग्राम और वहुतसा धन पुरस्कारमें दिया. इसके ही शासन कालमें भोटिया विद्रोहके पीछे नेपालमें यवन (मुसल्मान) जातिका निवास आरम्भ हुआ।

इन्होंनेही ६३१ नेपाली सम्वत्में तुलजादेवीका एक मन्दिर वनवाकर देवीकी मूर्ति स्थापन की। कान्तिपुर और ललितपाटनके निवासियोंको अधिकारमें लाकर शेखागाढ़ पर्वतकी चितलिङ्ग उपत्यकावाली तांवेकी खानसे तांवा लिया और सुकिया (१) वदलेमें ताँवेका पैसा चलाया।

(१) सुकिया 'या' सूकी प्राचीन नैपाली मुद्राका नाम है। इसका वर्त्तमान मूल्य आठ पैसे या दो आने हैं।

रत्नमल्लकी मृत्युके पीछे उसका पुत्र अमरमल्ल काठमाण्डूके सिंहासन पर बैठा। इसके राज्यकालमें वणिकपुरके कुम्हारोंने अनन्त नारायणकी मूर्त्ति लेकर पशुपति-नाथके मन्दिरमें स्थापन करनेकी चेष्टा की किन्तु आज्ञा न पाकर उन्होंने इसी रातमें वाछलादेवीके मन्दिरके पास और एक मन्दिर वनवाया और उसमें नारायणकी मूर्त्तिको स्थापन किया भुवनेश्वरके उपासक मणि आचार्य्यके वंशधर लोगोंने कुमार और कुमारीके लिये एक यात्रा उत्सव किया. कहते हैं: कि ६७७ नैपाली सम्वत्में जिस दिन मणिआचार्य्य " मृतसञ्जीवनी ". खोजनेके लिये वाहर निकले थे उसी दिनके स्मरणमें यह उत्सव होता है। उनके वंशधर लोगोंने: उनकी मृत्युका समाचार सुनकर अन्त्येष्टि क्रियाका उद्योग किया। जव उन्होंने देव पाटनसे लौटकर उन लोगोंका अभिप्राय समझा तो अपनी इच्छासे अग्निमें प्रवेश करगये।

राजा अमरमल्लने मदनके पुत्र अभयराजको मुद्राङ्कनका अधिनायक करके दृष्टि नायकके पदपर अभिषिक्त किया। इस अभयराजने अपने धनसे वहुतसे मन्दिर आदिक वनवाये थे।

इस राजाने खोकनाकी महालक्ष्मीदेवी हलचौकदेवी मानमइजुदेवी पचलि भैरव तथा लुम्रिकालीकी दुर्गादेवी कनकेश्वरी घंटेश्वरी और हरिसिद्धिकी पूजामें नाचका उत्सव नियत किया था। पहिले कनकेश्वरीदेवीकी पूजा नरवलिसे होती थी। यही कारण है जो अव इन देवीजीका पूजा और उत्सव वन्दकर दियेगये हैं। उपरोक्त उत्सवोंमेंसे कोई २ उत्सव वारह वर्षमें होता है।

ललितपुर, वन्दगांओं, खेचो, हरिसिद्धि, लुभु, चम्पागांओ, फरफिङ्ग, मत्स्येंद्रपुर या वागमती, खोकना, पाङ्गा, कीर्त्तिपुर, थानकोट, वलम्बु, शतङ्गल, हलचौक, फुदुम, धर्मस्थली, टोखा, चपलिगांओ, लेलेग्राम, चुकग्राम, गोकर्ण, देवपाटन, नन्दीग्राम, नमशाल, मालीग्राम इत्यादि अच्छे २ स्थान उसके अधिकारमें थे, काठमाण्डूसे पशुपति ग्राम जानेके मार्गमें नन्दीग्राम है। यह नमशाल और मालीग्राम एक समय विशाल नगरके नामसे विख्यात थे, यहां प्राचीन कीर्त्तियोंके चिन्ह पायेजाते हैं।

नैपाली गणनासे ४७ वर्ष तक राज्य करनेके पीछे अमरमल्ल परलोक सिधारा फिर उसका पुत्र सूर्यमल्ल राजा हुआ सूर्यमल्लने राज्यासन पातेही भातगांओंके राजासे शंकर देवका स्थापित किया हुआ चंगुनारायण और शंखपुरग्राम छीन लिया। व

शंखपुरमें जाकर ६ वर्ष तक वज्रयोगिनीकी उपासना की फिर कान्तिपुरमें लौट आये। इनकी मृत्युके पीछे पुत्र नरेन्द्रमल्लने राज्य किया, इनके परलोकवासी होनेपर इनके पुत्र महीन्द्रमल्ल राजा हुए। इन्होंने दरवारके सामने महीन्द्रेश्वरी और पशुपतिनाथका मन्दिर बनवाया और भारतकी राजधानी दिल्लीमें जाकर बादशाहको अनेक प्रकारके हंस और शिकारी पक्षी भेंटमें दिये. बादशाहके प्रसन्न होनेपर इन्होंने अपना सिक्का चलानेकी आज्ञा मांगी। सम्राटने चांदीका सिक्का चलानेकी आज्ञा दी।

राजा महीन्द्रमल्लने अपने नगरमें आय अपने नामका 'मोहर' नामक चान्दीका सिक्का चलाया। यह सिक्काही नपालकी प्रथम रौप्यमुद्रा है इससे पहिले कभी नैपालमें चांदीका सिक्का प्रचलित था या नहीं सो कुछ पता नहीं मिलता, उस समयसे पहिले नैपालमें जितने तांबेके सिक्के पाये. जाते हैं उनके ऊपर बैल, सिंह, हाथी आदिकी मूर्ति बनी है।

इनकेही यत्नसे कान्तिपुर बहुत लोगोंकी बस्ती बनाथा। ६६९ सम्वत्‌के माघमासमें इन्होंने उक्त नगरमें तुलजाभवानीकी प्रतिष्ठाके निमित्त एक मन्दिर निर्म्माण कराया, इनके शासन काल ६८६ नैपाल सम्वत्‌में विष्णुसिंहके पुत्र पुरंदर राजवंशीने, ललितपाटनके दरवारके सामने नारायणका मंदिर बनवायाथा। राजा महीन्द्रमल्लके दो पुत्र थे, बडेका नाम सदाशिवमल्ल और छोटेका नाम शिवसिंहमल्ल था। इनकी माता ठाकुरीवंशकी थी।

पिताकी मृत्युके पीछे सदाशिवमल्लने राज्यका भार अपने हाथमें लिया किन्तु वह लम्पट और स्वेच्छाचारी राजा था किसी मेले या यात्राके समय राजमार्ग पर जिस सुन्दर स्त्रीको देखता उसीको पकडवाकर मंगालता इस प्रकार इसने कई सौ स्त्रियोंके धर्म्मको बिगाडा था। भोग विलासमें पडकर वह खजानेको खाली करने लगा. प्रजाने उसका ऐसा व्यवहार देखकर अपने चित्तसे राजभक्तिको दूर कर दिया। एक दिन राजा मनोहराकी ओर जा रहा था उसी समय लोगोंने लाठी मुद्गर लेकर उसके ऊपर प्रहार किया। राजा डरकर भातगांवमें भागगया किन्तु भक्तपुरके राजाने उसके बुरे चारित्रकी बात सुनकर बन्दी कर लिया. राजा सदाशिव कुछ पीछे नैपालसे भाग गया। उसके भाग जानेसे सूर्य्यवंशका यथार्थ स्वामित्व नैपालसे विदा हुआ।

प्रजाने सदाशिवको दूर करके उसके सौतेले भाई शिवसिंहको राज्यासन दिया राजाशिवसिंह ज्ञानी थे उन्होंने महाराष्ट्रदेशसे ब्राह्मणोंको बुलवाया और अपना गुरु बनाया। इनके शासनकालमें सूर्यवज्रनामक कांतिपुरवासी एक तांत्रिक पुरुष

तिब्बतकी राजधानी लासा नगरको गया था। महाराजके दो पुत्र थे वडा लक्ष्मीनृसिंहमल्ल और छोटेका नाम हरिहरसिंहमल्ल था। हरिहरसिंह कुछ २ तेजस्वभाववाला था। इसलिये पिताकी जीवदशामेंही ललित पाटनका शासन करनेको तैयार हुआ। इनकी माता गंगारानीने कांतिपुर और वडे नीलकण्ठके वीचमें एक वाग वनवाया था। वह रानीवन नामसे विख्यात है। उस वागकी टूटी फूटी दीवारें अंग्रेजी रेजीडेंसीके पास अभी देखी जाती है. कुछ काल पहिले इसही वागमें जंगवहादुरके शिकारके लिये हरिणके बच्चे पाले जातेथे।

एक दिन हरिहरसिंहके पिता शिकार खेलनेको वाहर चले गयेथे। उनके पीछे हरिहरसिंहने अपने भाई लक्ष्मीश्वरसिंहसे लडाई झगडा करके उनको दरवारसे वाहर निकलवा दिया था ७२४ नैपाली सम्वतमें राजा शिवसिंहने स्वयंभूनाथके मन्दिरकी मरम्मत करादी, कुछ दिन पीछे जव राजा रानी गंगादेवीके साथ परलोकवासी हुआ तो उसका वडा पुत्र लक्ष्मीनरसिंह कान्तिपुरका राजा हुआ। इनके किसी कुटुम्बीने जिसका नाम भीममल्ल था भोट देशमें जाकर कान्तिपुर और भोटके व्यापारको मिला दिया. इस वाणिराज्यसे भोटका सोना और चांदी नैपालमें आया था, काजी भीममल्लकी चेष्टासे और यत्नसे भोट राजके संग राजा लक्ष्मीनरसिंहकी इस प्रकार सन्धि हुई थी कि, वाणिराज्य करनेको जाकर जो कोई मनुष्य तिब्वतकी राजधानी लासामें मरेगा उसकी अस्थावर स्थावर समस्त सम्पात्ति नैपाल गवर्नमेंटको लौटा दी जायगी इसकी ही सहायतासे सिवानेका कुटी नामक देश नैपालके इलाकेमें मिलगया था।

भीममल्लने तिब्वतकी राजधानी लासासे लौटकर राजाकी उन्नतिके लिये विशेष सहायता की थी वास्तवमें वह राजा लक्ष्मीमल्लको नैपालका एक छत्र राजा वनाना चाहताथा। किसीने राजासे भीममल्लकी चुगली खाई कि भीममल्ल स्वयं राज्य लेनेकी चेष्टा करता है आपके संग उसका कपट व्यवहार है। राजाने यह वात सुनते ही भीममल्लका शिर काटनेकी आज्ञा दी. भीममल्लने अपने जीते जी धर्मशिला विग्रह पर तांवेका पत्तर चढ़ा दिया था. कहते हैं कि, दक्षिण भारतवासी नित्यानन्द स्वामी नामक एक ब्रह्मचारी उस समय नैपालमें आया था। परन्तु उसने किसी मूर्तिको प्रणाम नहीं किया। राजाने इस समाचारको सुनतेही क्रोधित हो ब्रह्मचारीको प्रणाम करनेकी आज्ञादी। आज्ञानुसार नित्यानन्द स्वामीने मूर्तिके सामने जैसेही शिर झुकाया वैसेही चन्द्रेश्वरी, धर्म्मशिला व कामदेव आदिकी मूर्त्तियें टूट गई भीममल्लको मरवा-

नेके पीछे उसकी स्त्रीने राजाको शाप दिया; जिससे वह विक्षिप्त होने लगा, जब राजकाज करनेमें राजा बिलकुल असमर्थ होगया; तो उसका पुत्र प्रतापमल्ल ७५९ नैपाली सम्वत्में राजगद्दीपर बैठा ७७७ नैपाली सम्वत्में १६ वर्ष तक राज्य करके राजा लक्ष्मीनृसिंह स्वर्गवासी हुआ राजा लक्ष्मीनृसिंहने इन्द्रपुर नगर और जगन्नाथ देवालय स्थापन किया तथा ७७४ नैपाली सम्वत् माघमासकी शुक्ल पंचमीको कालिका देवीका स्तोत्र रचकर पत्थरोंके ऊपर खुदवादिया और स्थान २ के देवालयोंमें जडवा दिया यह देवगीत १५ भाषाओंकी वर्णमालामें लिखा गया है। ÷

इस राजाको अनेक शास्त्र कण्ठगत थे तथा पन्द्रह सोलह भाषा जानता था।

इसके ही समयमें श्यामार्पालामा नामक एक भोटवासीने नैपालमें आकर ७६० नपाली सम्वत्में स्वयंभूनाथका गर्भकाष्ट बदलवादिया। और वहांकी मूर्त्तियोंके ऊपर गिलटी करादी तथा उक्त मन्दिरके दक्षिणवाले छज्जेमें राजा लक्ष्मीनरसिंहका नाम खुद्वाया ७७० नैपाली सम्वत्में राजा प्रतापमल्लने स्वयंभूनाथके माहात्म्यमें एक दूसरी कविता रचकर पत्थरोंपर खुदवादी और उन पत्थरोंको मन्दिरमें लगवादिया। प्रतापमल्ल अपनी प्रचलित मुद्रामें निजनामके संग कवीन्द्र "उपाधि" अंकित कराके अपनेको विशेष गौरवान्वित समझाथा।

प्रतापमल्लने पहिले त्रिहुतकी दो राजकन्याओंसे विवाह किया फिर युवा अवस्थाके मदमें भर कर नैपाली रीतिके अनुसार लगभग तीन हजार स्त्रियोंको अपनी पत्नी बनाया इसी अतृप्त वासनाके वशमें होकर एक समय उसने किसी कन्याको मारडाला; अपने किये इस पापसे भीत होकर स्वयं राजाने अपने परिवारके सब लोगोंसे तुलादान करवाया था और आपभी किया था।

इसकेही समयमें महाराष्ट्रसे लम्बकर्ण भट्ट और त्रिहुतसे नरसिंह ठाकुर दो ब्राह्मण नैपालमें आये और राजासे साक्षात्कर गुरु उपाधिसे विभूषित हुए. राजा प्रतापमल्लके पार्थिवेन्द्रमल्ल नृपेन्द्रमल्ल महीपेन्द्र (महीपतीन्द्र) मल्ल और चक्रवर्त्तीन्द्रमल्ल नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। चारोंने पिताकी इच्छानुसार पिताके जीवित रहतेंही एक एक वर्ष राज्यशासनका सुख भोगा, तीसरे पुत्र महीपतीन्द्रके शासन कालमें राजाने पुत्रकी सहायताके निमित्त ७८८ नैपाली सम्वत्में अक्षोभ्य बुद्ध मन्दिर सामने धर्म्मधातु मण्डलपर इन्द्रके वज्रको स्थापित किया। चौथा पुत्र चक्रवर्त्तीन्द्र

÷ D. Wright's History of Nepal, नामक पुस्तकमें इस शिला लिपिकी एक नकल है।

एक वर्षतक राज्य करके परलोकको सिधारा। ७८९ नैपाली सम्वत्में चक्रवर्त्तीन्द्रने जो सिक्का चलाया था उसकी पीठपर तीर, पाश, अङ्कुश, कमल और चामरका ठप्पा है।

पुत्रकी मृत्युसे रानीको वहुत दुःखी देखकर राजाने उसका शोक शान्त करनेके लिये एक वडी पुष्करिणी और मन्दिर वनवाया। यह पुष्करिणी रानी पोखरीके नामसे विख्यात है। ८०९ नैपाली सम्वत्में राजाके परलोक सिधारने पर उसका पुत्र महीन्द्रमल्ल, 'भूपालेन्द्र' नाम धारणकर राजसिंहासनपर वैठा। ८१४ नैपाली संवत्में उसकी मृत्यु हुई। तव पुत्र श्रीभास्करमल्लने चौदह वर्षकी अवस्थामें राजभार संभाला। भास्करमल्लके राज्य कालका जव आठवां वर्ष चलताथा; तव आश्विन मासके दशहरेके उत्सवपर पाटन और भातगांओंके लोगोंमें वडा विरोध फैला। उसी वर्ष नैपालमें महामारीका भी भय हुआ आर उसी रोगसे ८२२ नैपाली संवत्में राजाकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्युके संग २ ही कान्तिपुरके सूर्यवंशीय राजवंशका लोप होगया, राजाकी रानी और दूसरी स्त्रियें सती दाह होनेसे पहिलेही अपने कुटुम्बी जगज्जयमल्लको राजगद्दी देकर स्वर्गको सिधार गईं।

राजा जगज्जयके पांच पुत्र थे राजेन्द्रप्रकाश और जयप्रकाश पिताकी राज्य प्राप्तिके पहिले ही जन्में थे। तथा राज्यप्रकाश नरेन्द्रप्रकाश और चन्द्रप्रकाशका जन्म पीछे हुआथा। राजाके जीवित रहते ही वड़ा राजेन्द्र और छोटा चन्द्रप्रकाश परलोकवासी होगया।

राजाको दोनों पुत्रोंके वियोगका वड़ा दुःख हुआ। शोक शान्तकरनेके लिये उनके खास सिपाही समझानेलगे और राजकुमार राज्यप्रकाशको राजगद्दी देनेका अनुरोध करनेलगे।

उसी समय राजाने सुना कि, गोर्खाली राजा पृथ्वीनारायणने नवकोट तक अपना राज्य फैलालिया। अतएव अपनी दी हुई देवोत्तर सम्पत्तिको शत्रुके हाथमें देखकर वह वहुत घवराया। ८५२ नैपाली सम्वत्में उसकी मृत्युके पीछे पुत्र जयप्रकाशमल्ल काठमाण्डूके सिंहासनपर वैठा। कुमार राज्यप्रकाशमल्ल राज्य सिंहासन पाकर पाटनको चलागया और राजा विष्णुमल्लके सत्कारसे प्रसन्न होकर वहां रहगया। राजा विष्णुमल्लके कोई पुत्र नहीं था। इस कारण राज्य प्रकाशमल्लको ही उसने अपना सिंहासन देनेकी प्रतिज्ञा की।

राज-कर्मचारी ठारीलोगोंने छोटे भाई नरेन्द्रप्रकाशको देव, पाटन 'शङ्ख' चांगु

गोकर्ण और नन्दीग्राम नामक पांच गांव देदिये । राजाने ठारी लोगोंके इस कामसे अप्रसन्नहो उनको वन्दी किया और भाईको उक्त पांच गांवोंके अधिकारसे वेदखल करा । इसलिये नरेन्द्रप्रकाशको पिताकी राजधानी काठमाण्डू छोडकर भांतगांवमें जाकर रहना पड़ा । इसके कुछही दिन पीछे नरेन्द्र प्रकाशकी मृत्यु होगई ।

समय पाकर उक्त ठारी लोग छुटगये और रानी दयावतीकी ओर होकर उसके आठ महीनेके पुत्र ज्योतिप्रकाशको सवके सामने राजा वना दिया । राजा जय प्रकाश दरवारको छोडकर ललितपाटनमें भाग गया । किन्तु वहांके प्रधानलोगोंने उसको आश्रय नहीं दिया । इस कारण रानी दयावतीके आश्रय लेनेके लिये वह गोदावरीको चलागया । वहांसे भागकर गोकर्णेश्वरमें और फिर गुह्येश्वरीके मन्दिरमें जाकर आश्रय लिया । यहांपर एक भक्त पुरुषने उसको देवीका खड्ग देकर शत्रुओंसे युद्ध करनेका उत्साह दिया. उससे लडनेको कान्तिपुरसे जो सेना आतीथी, वह सेना इसकेही हाथसे मारीगई. राजा कान्तिपुरमें लौटकर दरवारमें गया और वालक ज्योतिप्रकाशके दो टुकडे करके उसकी माता रानी दयावतीको लक्ष्मीपुरके चौकमें कैद करदिया ।

राजा जयप्रकाशने इस प्रकार अपने शत्रुओंको दवाकर नवकोटपर चढाई की गोर्खा राजा पृथ्वीनारायण हारकर अपने देशको भागगया । इससे आठ वर्ष पीछे पृथ्वीनारायणने फिर भी नवकोटपर चढाई की और त्रिहुतवासी वत्तीस व्राह्मणोंकी व्रह्मोत्तर भूमि छीनली । उक्त व्राह्मणोंने नैपालके राजासे यह सव वातें कहीं । इसी समय राजाके अभाग्यने वल किया और उसकी समझमें फेर हुआ । जव उसने सुन कि काशीराम थापा नामक एक पुरुष नवकोटका अधिकार दिलानेमें पृथ्वीनारायणकी सहायता करता है । तव उसने थापाको वुलाकर सव वात पूंछी । यद्यपि काशीरामने अपना निर्दोष होना सव प्रकारसे प्रमाणित करादिया । तथापि राजाने चावहिलके गौरीघाटपर जव कि, काशीराम सन्ध्या करता था गुप्तघातकसे उसका संहार कराडाला ।

गुह्येश्वरीकी कृपासे जयप्रकाशने पुनर्वार राज्य प्राप्त करके कृतज्ञताके निमित्त मंदिरके सामने घाट और गृहादिक वनवाये और देवीकी पूजा खर्चके लिये भूमिदान की थी । इसी राजाने उक्त देवीजीकी पूजाके उत्सवमें ज्योनारकी रीति चलाई थी । पशुपतिनाथके मन्दिरके निकटही उसने एक देवीके ऊपर करोड मृण्मय शिवलिंगकी पूजा पद्धतिका प्रचार किया था, जो आजतक कोटिपार्थिव पूजाके नामसे विख्यात है ।

उसी समयमें पृथ्वीनारायणने वहुतसी सेना लेकर कीर्त्तिपुरपर चढाई की, दोनों दलोंमें

घोर संग्राम हुआ। इस युद्धमें नैपालराजकी ओरके सर्दार शक्तिवल्लभकी बारह हजार सेना मारी गई। दोनों पक्षकी विशेष हानि होनेपर भी राजा जयप्रकाशने पृथ्वीनारायणको राज्यसे बाहर निकाल दिया था। किन्तु ठारी लोग सीमान्तवर्ती त्रिहुतवासी ब्राह्मणोंसे डाह रखतेथे। इस कारण पृथ्वीनारायणके पास गये। और उसको नैपालका कुछ अंश देदिया।

इस समय राजा रणजीतमल्ल भातगांवके सिंहासनपर विराजमान था। वह भी गोर्खालियोंको पराजित करनेकी इच्छासे नागा सिपाहियोंको सताने लगा। ८८७ नैपाली सम्वत्के आषाढ मासमें भातगांवके बीच २४ घंटेके भीतर २१ बार भूकम्प हुआ था। इसके आठ मास पीछे ८८८ सम्वत्में पृथ्वीनारायणने पुनर्वार कान्तिपुरपर चढाई की। उस दिन इंद्रयात्राका उत्सव था। नैपालकी सेनाके साथ सब नगरवासी भी शराब पीकर उन्मत्त थे। इस कारण दो एक घंटेसे अधिक युद्ध न हुआ। राजा देवीके मन्दिरमें पूजा कररहा था उसी समयमें राजा पृथ्वीनारायणने आकर पहिले कान्तिपुर और पीछे ललितपुरको अपने अधिकारमें कर लिया।

राजा यक्षमल्लने पाटनपर अधिकार करके अपनी इकलौती कन्याको पाटनका राज्य देदिया, समय पाकर यही नगर काठमाण्डूके अधिकारमें आगया. राजा शिवसिंहका छोटा बेटा हरिहरसिंहमल्ल इस प्रदेशका शासन करने आया, हरिहरसिंहकी मृत्युके पीछे उसके पुत्र सिद्ध नरसिंहको राज्य मिला। यह बडा ज्ञानी था। उसकी अनेक कीर्त्ति नैपालके स्थान २ में विद्यमान हैं। ७४० नैपाली सम्वत्में उसने अपने गुरु विश्वनाथ उपाध्यायकी अनुमतिसे पुनर्वार तुलजादेवीकी प्रतिष्ठा की। ७५७ नैपाली सम्वत्के फाल्गुनमास व पुनर्वसुनक्षत्र और आयुष्मान् योगमें उसने कोट्याहुति यज्ञ करके राधाकृष्णके मन्दिरकी प्रतिष्ठा कराई।

इस राजाकी बौद्धधर्म्ममें विशेष श्रद्धा थी। राजाने हटको विहार गिरवाकर फिरसे निर्माण कराया। इसके अतिरिक्त औरोंकी चेष्टासे ज्येष्ठवर्णतङ्गल धर्म्माकृति तव मयूर वर्ण विष्वाक्ष 'वैष्णववर्ण, ओंकाली रुद्रवर्ण, हक, हिरण्यवर्ण, यशोधराव्यूह, चक्र, शक्र, दत्त, यण्णु, बम्वाहा, ज्योवाहा और धूमवाहा 'नामक कई एक विहार बनेथे। यहांका जम्बी विहार निर्वाणिक अर्थात् जो लोग निर्वाण तत्त्वके जाननेकी इच्छा करतेथे। उनके निमित्त हैं यह लोग विवाह नहीं करते इस जगह निर्वाण सम्प्रदायी लोगोंके और भी पांच विहार हैं।

ऊपरही लिख चुके हैं कि, राजा लक्ष्मीनरसिंहके कुटुम्बी, काजी भीममल्लकी सहायतासे नैपालमें तिब्बतवासियोंके संग वाणिज्य व्यापारके लिये संधि हुई थी। उसके नियमसे ललितपुरके बनियोंके संग भोटजातिका वाणिज्य आरम्भ हुआ।

७६९ नैपाली सम्वत्में भण्डार थानके पासकी पुष्करिणीके निकट उसने एक एक भुगोल मण्डप बनाया। इस मन्दिरके ऊपरी भागके काठमें नक्षत्र और स्वर्गीय देवताओंकी मूर्त्तियें बनी हैं। उक्त वर्ष पौषमासकी मकरसंक्रान्तिके उत्सवमें उसने हाल्लखाँवासी जानकीनाथ चक्रवर्त्ती नामक एक ब्राह्मणको अठारह पुराण दान किये थे। ७७२ नैपाली सम्वत्में वह तीर्थयात्राको चला। ७७४ नैपाली सम्वत्में भयानक आंधी आई जिससे नैपालके बहुतसे मन्दिर और घर टूटगयेथे। राजाने धर्म्मरत होकर मन्दिरादि स्थापन और भूमिदान आदि सत्कर्म्मोंमें जीवनका शेष काल बिताया। ७७७ नैपाली सम्वत्में उसने राजसिंहासनको छोडकर संन्यास धर्म्म लेलिया। कहावत है कि, नैपालमें श्रेष्ठ गुणवाला ऐसा राजा नहीं हुआ उसका नाम लेनेसे सब पाप नष्ट होते हैं।

उसके पीछे श्रीनिवासमल्ल ज्येष्ठ शुक्ल १२ को (७७७ नै० सं) में मत्स्येन्द्रनाथके उत्सवके दिन नैपालके सिंहासनपर बैठा। ७७८ नैपाली सम्वत्में भातगांओं और ललितपुर राज्यने मिलकर कान्तिपुरके राजासे युद्ध किया। उस काल श्रीनिवास और प्रतापमल्लमें कालिका पुराण और हरिवंश ग्रंथको छूकर मित्रता स्थापितहुई थी। तथा ललितपुर और कान्तिपुरमें आने जानेके लिये जो एक मार्ग है, उसके खुले रखनेकी परस्पर प्रतिज्ञा की गई।

७८० नैपाली सम्वत्में भातगांओंके राजा जगत्प्रकाशमल्लने चाङ्गुके पासकी छावनीमें आग लगाकर आठ आदमियोंको मारा और २१ लोगोंको बन्दीकरके लेगये। इसमें राजा श्रीनिवासने प्रतापमल्लके संग मिलकर पहिले बन्देग्राम और चम्पारनकी छावनीपर अधिकार किया। पीछे चोरपुरीको जीता। तब भातगांओंके राजाने हाथी और धन देकर उससे संधि करली। वहां सात दिनतक रहनेके पीछे उन्होंने नकदेश गांओंको जीतकर लूटा और थेमी अधिकार करके अपनी २ राजधानीको लौट गये।

राजा श्रीनिवासने ७८३–७९८ नैपाली सम्वत्में बहुतसे मन्दिर बनवाये और संस्कार कराये। ८०१ नैपाली सम्वत्में उसने भीमसेनका एक बडा मन्दिर बनवाया। फिर उसके पुत्र योगनरेन्द्रमल्लने सिंहासन पाया। इसने मणिमण्डप नामक एक बड़ा घर बनाया। उसका पुत्र बालकपनमें ही मरगया। इस कारण राजाने उदासीन होकर संसार धर्म छोड़ दिया। उस समय सर्व साधारणके बहुत कहनेसे कान्तिपुरका राजा

महीपतीन्द्र या महीन्द्र पाटनका राजा हुआ । इसके मरनेपर जययोगप्रकाशने राज्य-भार लिया । इसके पीछे योगनरेन्द्रकी इकलौती कन्या रुद्रमतीका पुत्र विष्णुमल्ल ८४२ नैपाली सम्वत्‌में राजा हुआ । इसके समय भयंकर दुर्भिक्ष और अनावृष्टि हुई । इसने बहुतसे पुरश्चरण और नाग साधन करके रूठे हुए देवतोंको मनाया । इनके कोई पुत्र नहीं था । अतएव राज्यप्रकाशकमल्लको गादीलिया । राज्यप्रकाश शान्त स्वभवावाला था । इस कारण प्रधान लोगोंने कपटसे उसकी दोनों आंखें फोड़ दी । राजा राज्य-प्रकाशने इस दारुण दुःखको न सहकर अकालमें ही इस असार संसारको छोडदिया ।

तब पाटनके ढालाछेंकाछ जातिके और २ प्रधान लोगोंने भातगांओंसे राजा रणजीतको लाकर पाटनका शासन भार सौंपा । किन्तु उसके शासनसे प्रसन्न न होकर एक वर्षमें राज्यसे अलग करदिया. और कान्तिपुरके राजा जयप्रकाशको पाटनका शासन भार सौंपा । किन्तु आश्चर्य्यकी बात है कि, उसके भी राज्यसे प्रधान लोग निश्चिन्त न रहसके और एक वर्ष पीछे विष्णुमल्लके धेवते विश्वाजित्‌को राजा बनाया । विश्वाजित्‌के चार वर्ष राज्यकरनेपर प्रधान लोगोंने उसका भी प्राणसंहार किया । अनन्तर नवकोट जाय वहां पृथ्वीनारायणकी अनुमतिसे उसके छोटे भाई दलमर्दन-शाहको लाकर पाटनके सिंहासनपर बैठाया । एक समय पृथ्वीनारायण और उसके छोटे भाईमें विरोध होगया । और दोनोंमें घोर युद्ध हुआ । राजा दलमर्दनके इस आचरणसे अप्रसन्न होकर प्रधान लोगोंने उसको चौथे वर्ष राजगद्दीसे उतार दिया और विश्वाजित्‌के वंशमें उत्पन्न हुए तेजनरसिंहमल्लको राजसिंहासन पर सुशोभित किया ।

तेजनरसिंहके तीन वर्ष राज्य करनेपर राजा पृथ्वीनारायण नैपालमें आया । जब उसने पाटनपर चढाई की तो राजा तेजनरसिंह भातगांओंको भाग गया । जब पृथ्वीनारायणने देखा कि, प्रधान लोगही यहांके हर्त्ता कर्त्ता हैं, तो उन विश्वास-घातकोंको मरवादिया । ईसवीकी अठारहवीं शताब्दीके मध्यभागमें जब लार्ड क्लाइव धीरे २ बंगालकी ओर पैर पसारकर भारतमें अंग्रेज जातिकी होनहार साम्राज्य भीतको बनारहेथे । ठीक उसी समय बंगालके उत्तर ओर हिमालयकी तलैटीमें नैपाल राज्य छोटे २ सामन्तोंके अधीनमें बैठकर परस्परकी विपत्तिको सहन कररहाथा । ऊपर लिखे हुए भातगांओं काठमाण्डू और पाटनके पिछले इतिहाससे जाना जाता है कि जब तेजनरसिंह पाटनके सिंहासनपर और अपुत्रक राजा जयप्रकाश काठमाण्डूकी गद्दीपर बैठे थे, तब भातगांओंके स्वामी राजा रण-

जीतमल्ल किसी साधारण कारणसे उक्त दोनों राजाओंके प्रतिद्वंद्वी होकर सेनासहित उनके ऊपर चढाई करनेके लिये आगे वढे। राजा रणजीतने अपने शत्रुओंके हाथसे रक्षा पाने और अपनेको काठमाण्डू, पाटन और भातगांओंका एकही स्वामी वनानेकी इच्छासे विदेशी शत्रु पृथ्वीनारायणको आदरसे लाया। अभिमानी रणजीतने यह नहीं समझा कि, विदेशी शत्रुको घरमें वुलानेसे कैसा विषैला फल फैलेगा राजा पृथ्वीनारायण इस वुलावेसे वडा प्रसन्न हुआ उसके हृदयमें पुनर्वार नपालकी जय आशा उत्पन्न हुई। जिस नैपालपर उसके वडे वूढे चढाई करके अपना मुंह लेकर फिर आये थे और आपभी वहांसे युद्ध करके भागा था उसी नैपालकी लालसा उसके हृदयसे अवतक दूर नहीं हुई थी। अपने भाई दलमर्दनको पहिले पाटनका राज्य दिलाने और चालाकीसे उसको भगानेकी वात अवतक उसके हृदयमें खटकती थी। इस कारण रणमल्लका वुलाना अच्छा समझा. चतुर रणजीत सहजसेही समझ गया कि, मेरा सहायकारी मित्रही मुझसे शत्रुता करनेके लिये तैयार है। अतएव अपनेको हीन वल देखकर परस्पर संधि करनेका प्रस्ताव किया और उस संधिवलसे दृढ होकर शत्रुको सेना सहित भगानेका उपाय करने लगा। किन्तु उपायका फल कुछ अच्छा नहीं हुआ।

राजा पृथ्वीनारायणने राजा लोगोंको एकत्र देखकर उनसे युद्ध नहीं किया, किन्तु अपना वल वढानेके लिये पहाडी सरदारोंको छलवल करके अपने दलमें लानेकी चेष्टा करने लगा। पहिले पहिले भातगांओंके पूर्ववाल धूम खेत और चौकोटवालोंके संग छः वार युद्ध करके उनको अपने वशमें किया, फिर चौकोटमें गढ वनवाकर अपनी सेनाको वढाया उस समय महेन्द्रसिंहराय नामक एक राजपुरुषने गोर्खाके संग १५ दिन तक संग्राम किया। इस युद्धमें पहिले गोर्खा लोग पराजित होकर भागे किन्तु अगली लडाईमें महेन्द्ररायसिंहके मारे जानेपर चौकोटियाकी सेना संग्राम छोडकर भागी। दूसरे दिन प्रभात होतेही पृथ्वीनारायण रणभूमिको देखने गया। महेन्द्रसिंहका वूढा मृतक देह देखकर उसकी वीरताको सराहा और उसके परिवारको कई दिनतक राजमहलमें रखकर वडे आदरसे भोजन कराया फिर भरण पोषणके निमित्त पनावती 'वनेपा' नाला खदपु, सङ्गा आदि पांच गांव देकर अपने पूर्व अधिकृत नवकोट राज्यमें लौट आया।

कीर्तिपुरका पहिला युद्ध सन् १७६५ ईसवीमें हुआ था। इसके कई मास पीछे राजा पृथ्वीनारायणने फिरभी इस नगरपर दो वार चढाई की। तीसरी वारकी

चढाई और जयके पीछे जो भयानक अत्याचार हुआ था वह फादर गेसिपकि द्वारा लिखित नैपाल मिसनकी प्रकाशित सूचीसे भलीभांति जाना जाता है ।

कीर्तिपुरमें यह पाशविक अत्याचार दिखाकर राजा पृथ्वीनारायण पाटनको जीतनेकी इच्छासे आगे बढ़ा। पाटनके राजा तेजनरसिंहके शरण आनेसे पहिले पृथ्वीनारायणने सुना कि, कप्तान 'कीनलोकके' साथ अंग्रेजी सेना नैपालतराईकी दक्षिण ओर आ पहुँची हैं। यह सुनकर वह शीघ्रही दूसरे मार्गसे चलागया, पृथ्वी-नारायणके लौटआनेसे पाटनका राजा तेजनरसिंह एक वर्षतक निश्चिन्त रहा ।

कीर्तिपुरकी उस अत्याचारकी वात जिसमें सवही लोगोंकी नाकें कटवाली गई थी नेवारके राजाने अंग्रेजोंको सूचित कीं । सन् १७६७ ई० के आरंभमें कीनलोक साहव नैपालपर्वतके निकट पहुँचे । उस समय वर्षाऋतु थी, अंग्रेजी सेना विपरीत जलवायु और भोजनके अभावसे वडाही कष्ट पानेलगी। यही कारण हुआ जो उसको हारिदुर्गके सामनेसे लौटना पड़ा । अंग्रेजी सेनाके लौटजानेपर, भी गुरखिये लोग एक वर्षतक नैपालमें नहीं घुसे । सन् १७६८ ई० के समय जव नैपालमें इन्द्र यात्राका उत्सव हो रहा था, पृथ्वीनारायणने काठमाण्डूको आ-घेरा । काठमाण्डूके राजा और तेजनरसिंहने वहुतेरा यत्न किया -परन्तु सव निष्फल हुआ । जव इन दोनों भूपालोंने नैपालके धनवाना व अपने कुटुम्वियोंको भी पृथ्वीनारायणकी ओर देखा तो विना किसी विरोधके किये हुए भातगांवसे चले गये ।

राजा रणजीतके इकलौते पुत्र वीरनृसिंहको राज्यसे दूर करनेके लिये उसकी दूसरी रखेलीसे उत्पन्न (सातवाहाल्यों) जारज पुत्रोंने कपट चाल चलकर गोर्खा-पतिको केवल नाम मात्रका राजा वनाय परस्पर सम्पत्ति और सिंहासन व राज्यके बाँटनेका प्रवन्ध कर लिया,फिर अपने इस अभिप्राय और प्रस्तावको राजा पृथ्वीनारा-यणसे निवेदन किया, उसको सुनकर राजपृथ्वीनारायण प्रसन्नतापूर्वक भातगांवका राज्य लेनेकी इच्छासे आगे वढा ।

गोर्खाली राजाने जारजपुत्रोंकी सम्मतिसे भातगांवपर चढाई की । सातवाहाल्या लोगोंने कई घंटे तक खाली फैरकर करके युद्ध किया और फिर अपनी गोली वारूद शत्रुओंके पास भेजदी । अनन्तर उस दरवाजेको जहां वह लडरहेथे--छोडकर पीछे हटगये । गोर्खोंने नगरमें घुसते ही उसपर अधिकार किया । फिरभी दरवारके सामने एकवार भयंकर युद्ध हुआ, राजा जयप्रकाशके पाँवोंमें गोली लगी और वह मूर्च्छित

होकर गिरपडा । सन् १७६९ ई० के आरम्भमें ही यह युद्ध हुआ था । इस युद्धसे ही नैपालके पुराने राजवंशका पतन हुआ और गोर्खालियोंकरा राज्य जमा ।

राजा पृथ्वीनारायणने विजयी होकर दरबारमें प्रवेश किया । उस समय वहाँपर राजा जयप्रकाश, रणजीतासिंह और तेजनरसिंह आदि सवही लोग वर्त्तमान थे । परस्पर प्रसन्नतासे बातें हुई । राजा पृथ्वीनारायणजीने रणजीतमल्लसे कहा कि, आप अपने भातगांवमें पहलेके समान राज्य करें- परन्तु रणजीतसिंहने अस्वीकार करके कहा कि 'मैं अपने मित्रोंकी विश्वासघातकसे बहुतही घबडागयाहूं, इस कारण अब राज्य नहीं करूंगा, मेरी इच्छा है कि, काशी जाकर जीवनके दिन पूरे करूँ। यह सुनकर राजा पृथ्वीनारायणने रणजीतसिंहके काशी जानेको प्रबन्ध करदिया । जानेके समय चन्द्रगिरि पर्वतपर खडे होकर जारज (सातवाहाल्यों) पुत्रोंकी शठता तथा अपने पुत्र वीर नरसिंहके वधका वृत्तान्त पृथ्वीनारायणसे निवेदन किया । यह सुनकर राजा पृथ्वीनारायणने सातवाहाल्योंको उनके परिवार सहित बुलवाकर सबकी नाकें कटवालीं और सम्पत्ति छीनली ।

तदनन्तर राज्यप्रकाशने प्रार्थना की कि, मैं गोलीकी चोटसे अधमरा हो रहाहूं, इस लिये मुझको पशुपतिनाथके आर्य घाटपर पहुँचादिया जावे वहाँ प्राण छूटनेपर अग्निसंस्कार करवादेना ।

ललितपुरके राजा तेजनरसिंहने जब देखा कि, हमारे मित्र रणजीतकेही द्वारा यह विपत्ति अपने ऊपर आई, अब किसको दोष लगाया जाय ? इनबातोंका विचार करनेसे हृदयमें बड़ी घबराहट हुई परन्तु धीरज धरकर मनही मनमें ईश्वरका स्मरण किया । ठीक उसही समयमें राजा पृथ्वीनारायणने तेजनरसिंहसे उसके मनकी बात पूछी, परन्तु वह चुप रहा । राजा पृथ्वीनारायणने इस बातसे अप्रसन्न होकर तेजनरसिंहको लक्ष्मीपुरमें कैदकरदिया । नैपालके पिछले मल्लवंशीय राजा तेजनरसिंहने लक्ष्मीपुरमें ही अपने जीवनके पिछले दिनोंको विताया था ।

राजा पृथ्वीनारायणने नैपालके सिंहासनपर बैठकर किरात और लिम्बु जातिकी भूमिको अपने अधिकारमें करलिया और धीरे २ वह सब स्थानभी जो नैपालकी सीमाके बाहर थे उसके अधिकारमें चलेगये । उत्तरमें किरोण और कुही, पूरबमें विजयपुर और शिकमकी सीमापर बहतीहुई मेची नदी, दक्षिणमें मकवनपुर (माखनपुर) और तस्याणी (तराई) तथा पश्चिममें सप्तगंडकी; इस सीमाका बडा भूभाग पृथ्वीनारायणके अधिकारमें आगया । भातगांवसे कान्तिपुरमें आकर उसने एक बडी धर्मशाला

बनवाई। इसही राजाने सबसे पहले नीच "युतवर" जातिको राजाके निकट आनेकी आज्ञादी + सातवर्षतक राज्य करनेके पीछे गंडकीके किनारे मोहनतीर्थकी पवित्र-भूमिमें नेपाली संवत् ८९५ के समय राजा पृथ्वीनारायणने परलोककी यात्रा की।

पृथ्वीनारायणके दो पुत्र थे उनमेंसे बड़ा सिंहप्रतापशाह पिताके पीछे राज्यसिंहासनपर बैठा तथा छोटा पुत्र शाहबहादुर बेतिया राज्यको चलागया। इधर सिंहप्रतापशाहने ८९८ नेपाली संवत्में आचार्योंके कपट जालमें फँसकर अपने शरीरको छोडा। सिंहप्रतापशाहकी मृत्युके पीछे उसका पुत्र रणबहादुर राजा हुआ और आचार्योंकी ओरसे शंकितहो उन सबको इन्द्राणीपीठके सामने मरवाडाला। फिर मंत्रिनायक वंशराजपांडेसे अप्रसन्न होकर उसका शिर कटवाया। तदनन्तर रणबहादुरका चचा शाहबहादुर नेपालमें लौट आया और अपने भतीजेका प्रतिनिधि बना। परन्तु रानी राजेन्द्रलक्ष्मीके साथ वैमनस्य होजानेके कारण पुनर्वार राज्यसे बाहर चलागया। उसके जातेही रानीने राज्यका समस्त भार अपने हाथमें लेलिया। इस बुद्धिमती रानीकी चेष्टासे गोर्खाराज्यके पश्चिममें बसा हुआ पापूला और कोकसीके बीचका समस्त देश नेपालमें मिलगया। रानीकी मृत्युके पीछे शाहबहादुर पुनर्वार नेपालको लौट आया और समस्त राजकाज करनेलगा। शाहबहादुरके परिश्रमसे सामन्त राज्य चौबीसी और बाईसी, लमजुंग, टेनहो; पश्चिममें गंगाजीके किनारेवाले स्थान श्रीनगर और कोकसीतकका समस्त भूभाग, पूर्वमें किरातराज्य व शुम्भेश्वरके स्थान नेपालकी सीमामें मिलगये।

सन् १७९१ ई० में गोरखियोंने नेपाल तिब्बत और भारतवर्षसे अपना व्यापार रक्षितहोनेके लिये अंग्रेजोंसे प्रार्थना की। उसही कालमें चीनके महाराजसे गोर्खाली राजाका दिगगारचा नामक स्थानके लिये घोर युद्ध हो रहा था। यह स्थान महाराज

+ कीर्त्तिपुरकी पहली लडाईमें जब राजा पृथ्वीनारायण राजा जयप्रकाशमल्लसे हार खाय एक डोलीमें बैठकर भागरहाथा। उस समय एक सिपाहीने राजा पृथ्वीनारायणका प्राण लेनेके लिये खड्ग उठाया, तत्काल एक दूसरे सिपाहीने उसका हाथ रोककर कहा "राजाको हम नहीं मारसकते" फिर एक दुआन तथा एक कसाई राजाको कन्धेपर चढाकर नवकोट पहुँचे। राजा पृथ्वीनारायणने दुआनकी कार्यतत्परतासे प्रसन्न होकर कहा "शाबास पूत" उस दिनसे दुआन जाति "पूतवर" नामसे पुकारी जातीहै। इस जातिके लोग राजाके शरीरको भी स्पर्शकरसकते हैं।

चीनके गुरूका था। चीनके मंत्री "थूमथाम" और काजी धुरिनने सेना लेकर खत्रिया रसउआ, और गोसाईंथानके नीचे देवराली नामक स्थानमें नैपालियोंको कई वार पराजित किया, नैपालीगण पराजित होकर पहिले धुनचू और फिर खचोराको भागगये। इस युद्धमें प्रधानमन्त्री दामोदर पांडेने वडा साहस दिखाया था।

सन् १७७२ ई० में नैपालियोंने चीनियोंसे पराजित होकर सितम्वर मासमें लार्ड कार्नवालिससे सहायता मांगी. परन्तु उक्त लार्ड महोदयने पहले तो चीनवालोंसे युद्ध करना स्वीकार नहीं किया। पीछे वहुत वादानुवाद होनेपर मार्च सन् १७९२ ई० में मेजर कार्क पेट्रिकको काठमाण्डू भेजा। परन्तु अंगरेजी सेनाके पहुँचनेसे पहले ही नैपालके महाराजने चीनवालोंसे सन्धि करली थी।

सन् १७९५ ई० में रणवहादुरकी अवस्था वीस वर्षपर पहुँची तव उसने राज्यका भार अपने हाथमें लेलिया। राज्य लेनेपर चचा शाहवहादुरसे कुछ मनोमालिन्य होगया। इसही कारणसे शाह वहादुरको जन्मभरका कारागार हुआ।

महाराज रणवहादुरने सन् १७०० ई० तक अत्याचारके साथ राज्य किया, अतएव प्रजाने अप्रसन्न होकर मंत्रियोंकी सहायतासे उसको राजगद्दीसे उतारा और वनारस भेजदिया। राजाकी पहिली स्त्री गुल्मी राजकन्याके कोई पुत्र न था, इस कारणसे महाराजने दूसरी एक विधवास्त्रीसे जो ब्राह्मणोंके मिश्रवंशमें उत्पन्न हुई थी विवाह करलिया उससे गीर्वाण योधविक्रमशाह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। तदोपरान्त सर्दारोंने इस वातका प्रमाण दिखाकर कि, राजपूत राजाको ब्राह्मणीके संग विवाह करना उचित नहीं महाराजको गद्दीसे उतारदिया।

सन् १८०१ ई० में नैपालियों और अंग्रेजोंमें एक सन्धि हुई। इस सन्धिके अनुसार नैपालके राजकार्यपर दृष्टि रखनेके लिये कप्तान डवल्यू, डी, नाक्स साहेव रेजिडेंट होकर नैपालमें रहनेलगे। पहले २ तो नैपालियोंने इन रेजीडेंट साहवको नगरमें नहीं घुसने दिया था, परन्तु पीछे अप्रेल सन् १८०२ ई० में रेजीडेंट साहव नैपालके भीतर गये और एक वर्षतक वहां रहकर सन् १८०३ में लौटे। सन् १८०४ ईसवीमें लार्डवेल्सलीने नैपालके संधिनियमोंको तोड़दिया और सन् १८१० ईसवीके मई मासमें पुनर्वार संधिकी वात चली।

महाराज रणवहादुरजी चार वर्ष तक संन्यासीके वेशमें काशीजीमें रहकर फिर नैपालको लौट आये और तत्काल अपने समस्त शत्रुओंके साथ दामोदर मंत्रीको

मारडाला तथा राज्यमें नया आईन चलाकर काँगडेकी ओर वढ़े । कांगड़ेके राजा संसारचन्द्रको युद्धमें पराजितकर उसके राज्यको भी नैपालमें मिलालिया ।

महाराज रणवहादुरकी मृत्युके पीछे उनके पुत्र गीर्वाणयोधविक्रमशाह राजा हुए, महाराज योधविक्रमशाहने राज्यकी रक्षाके लिये भीमसेन थापाको अपना प्रधामंत्री वनाया । सन् १८०८ ईसवीको नेपालमें भयानक भूचाल आया जिसमें वहुतसे मनुष्य मरे और मंदिरादि भी टूट गये ।

इन महाराजके पितानेही सवसे पहले नैपालमें सोनेका सिक्का (अशर्फी) चलाया था । अतएव गीर्वाण योधविक्रम शाहने भी पिताकी भांति नामपानेके लिये ढाक (डवल पयसा) नामक तांवेके सिक्केका प्रचार किया और उसपर अपना नाम भी छपवाया तथा थमवहिल—खेल नामक स्थानमें गोली वारूदका कारखाना स्थापित किया ।

सन् १८१० ईसवीमें अंग्रेजोंकी ओरसे सन्धि प्रस्ताव होनेपर भी नैपालके संग अंग्रेजोंका वाणिज्य दिन २ मन्द होनेलगा । सन् १७४७ ईसवीसे लेकर सन् १८१४ई० तक नैपाली लोग अंग्रेजी सीमामें आन२ कर उपद्रव करते रहे, इस कारण अंग्रेजोंने सन् १८१४ ईसवीके नवंवर मासमें नैपालसे युद्ध करनेकी डोंडी फेर दी । इस युद्धमें जनरल जिलिसपि मारेगये और जनरल मरलि तथा वुर्ड विशेषरूपसे आहत हुए, किन्तु जनरल अक्टरलोनीने व्रटिशगौरवकी रक्षा की थी अंग्रेजोंके मकवानपुर नगर और दुर्ग अधिकार करलेनेपर सन् १८१६ ईसवीमें नैपालके महाराजने अंग्रेजोंसे सन्धिकरके नये अधिकार किये हुए देशको छोडदिया, कुछदिन पीछे अंग्रेजोंने उन देशोंके वदलेमें नैपालके महाराजको तराई स्थान देदिया ।

सन् १८१६ ईसवीके सन्धिनियमोंको स्थिर रखनेके लिये गार्डनर नामक अंग्रेजी रेजिडेण्ट काठमाण्डूमें आये । उस समय महाराजा, वालक थे इस कारण नैपालका राज्य सर्दार भीमसेनथापाके ही हाथमें था । इस युद्धके कुछ दिन पीछे नैपालमें भयंकर वसन्त रोग फैला । शीतलाके भयसे नैपालवासी वहुत घवरागये थे । कुत्ते और गीध, नरमांसको लिये हुए दिन दहाडे सडकोंपर घूमते थे । नैपालका यह भयानक दिखाव देखकर सवका धीरज जाता रहा । महाराज दरवारमेंही रहते थे । तथापि उनके भी शीतला निकली, और इस रोगसे ही वह परलोकको सिधारे ।

महाराजकी मृत्युके पीछे उनके तीन वर्षके पुत्र राजेंद्रविक्रमशाह वहादुर शमशेरजङ्ग नैपालके सिंहासनपर वैठे तथा रणवहादुरकी विधवा स्त्री ललितात्रिपुरासुन्दरी

देवीने राज्यका भार अपने हाथमें रक्खा और सरदार भीमसेनथापा उसकी ही आज्ञानुसार राज्यकार्य करने लगे । सन् १८१७ इसवीमें डाक्टर वालिस उद्भिद् तत्त्वको जाननेके लिये नैपाल गये । सन् १८२९ ईसवीमें राजाके एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

भीमसेनथापाके प्रभावसे सब ही विस्मित और स्तंभित होगये । पशुपतिनाथके मंदिरमें भीमसेनने जो सोने चाँदीके किवाड चडायेथे उनको और उनकी वनाई धारा और धर्मशाकाको देखकर राजाने मनहीमन अपनेको धिक्कारा और सन् १८३३ ईसवीमें रानीकी इच्छासे भीमसेनको कैद करके जेलखानेमें रखना चाहा ।

सन् १८३४ ई० की भयंकर आंधीसे नैपालके वारूद खानेमें आग लगी जिससे वहुतसी जानें गई और रेजीडेंटी भी टूटगई ।

सन् १८३५ ई० में महाराजने सेनापति मातवरसिंहको कलकत्ते भेजदिया ।

सन् १८३८ ई० में महारानीने रणरंग पांड़ेको नैपालका सेनापति वनाया । इस कार्यसे भीमसेन थापा और मातवरसिंह निराश हुए । उस काल मातवरसिंह, पंजावके महाराज रणजीत सिंहकें पास किसी कार्यको भेजे गये । इधर महाराजने कई वर्षतक चेष्टा करके सन् १८३९, ईसवीमें भीमसेनथापाको कैद करालिया। भीमसेनथापाने आत्महत्या करके कारागारसे छुटकारा पाया । नैपालके इस महावीर पुरुषने २५ वर्ष तक नैपालका प्रवन्ध उत्तमतासे कियाथा। भीमसेनकी मृत्युके पीछे उसका मृतक शरीर राजमार्गमें घसीटागया और फिर विष्णुमती नदीके किनारे जला।

भीमसेनकी मृत्युके पीछे सन् १८४३ ई० तक नैपालके शाशन विभागमें वडी अन्धाधुन्ध रही । इसही कारणसे अंग्रेजोंके साथ युद्ध होनेके लक्षण दिखाई दिये । बुद्धिमान् हजसन साहवकी चेष्टासे युद्धका समस्त भय जातारहा । इसही वर्षमें वडी महारानीने रणरंग पांडेका पक्ष लेकर उसको ही राज्यका प्रधान मंत्री वनाया । उधर छोटी रानीजीने भी भीमसेनके मित्र मातवरसिंहको पंजावसे वुलाकर प्रधान मंत्री वनाना चाहा । राजपुरुष और सेनाके लोगोंनेभी मातवरसिंहकी तरफदारी की अतएव मातवरसिंहने अपने वल विक्रमसे शीघ्रही पांडे वंशका नाश करडाला ।

इसही समयमें नैपालके गौरवस्थल अद्भुतवली महाबुद्धिमान् श्रीमान् जंगवहादुर साधारण सैनिकरूपसे अपनी होनहार उन्नतिका आभास देरहे थे । श्रीयुत जंगवहादुर नैपाली काजीके पुत्र और मातवरसिंहके सम्वन्धी थे । मातवरसिंह वालक जंगवहादुरकी भावि शक्तिका विचार करनेसे डरगये अंग्रेजोंके रेजीडेंट हेनरी लारेंस साहवने भी जंगवहादुरकी वडी प्रशंसा की थी ।

जंगवहादुरने रनवासकी प्रधान रानीके साथ परामर्श करके सन् १८४५ ई० के मईमाससे मातवरको मारडाला और स्वयंही राज्यके सर्व सर्वा होगये, उस समय भी गगनसिंह प्रधान मन्त्री रहा। सन् १८४६ ई० में सर हेनरी लारेंसके नेपाल छोड़नेपर मिस्टर कालविन नेपालके रेजीडेन्ट हुए।

मातवरसिंहकी मृत्युके पीछे राजा और रानी दोनोंही जंगवहादुरके अधिकारमें होगये। उसकाल राजमन्त्री गगनसिंह तथा फतहजंग इत्यादि सरदारोंके संग रानी और जंगवहादुरका किसी वातपर विवाद होगया। वढते २ यह झगडा यहांतक वढा कि, १४ और १५ सितम्वर सन् १८४६ को नेपालमें भयंकर हत्यालीला हुई, महाराज अँधेरी रातमें भागकर कालविन साहवके पास चलेगये। इधर जंगवहादुरने अपनी सेनाके साथ नेपालके वडे २ सरदारोंको मारडाला। महाराजने रेजीडेंसीसे लौटनेके समय अपने कोट महलके चारों ओर रुधिर वहताहुआ देखा।

वुद्धिवान् जंगवहादुर अपने भाइयोंके वलसे दृढ होकर नेपालमें शक्तिशाली पुरुष गिनेजाने लगे। जिन पुराने सर्दारोंने जंगवहादुरके विरुद्ध शिर उठाया था वह सव ही उसके भयंकर खड्गका वार पाकर यमपुरीको सिधारगये। नेपालके महाराजभी अपने सामने विपत्तिका सामना देखकर वनारसको चले गये। जिस रानीने अपने पुत्रको राज्य दिलानेके लिये जंगवहादुरकी सहायता की थी वहभी काशीजीको भेजदीगई। सन् १८४७ ई० में महाराजने नेपालका राज्य पानेकी इच्छासे दो वार चढाई की किन्तु दोवार विफलमनोरथ हुए और तराईके युद्धमें उन्हें कैद होना पडा। इस प्रकारसे महाराजके राज्यभ्रष्ट होनेपर उनके वंशजके हाथमें राजसिंहासन सौंपागया।

राजा राजेंद्रविक्रमशाह नेपालके वाहर रहे थे कुछ दिनमें वह पागल होगये। अतएव सर्वसाधारणके कहने और सहानुभूतिसे राजपूतकुलतिलक महाराज सुरेन्द्र विक्रमशाह शमशेरजंग नेपालके सिंहासनपर वैठे। उनके स्वर्गवासी होनेपर पुत्र त्रैलोक्य वीरविक्रमशाह वहादुर शमशेरजंग नेपालके राजा हुए। इनका जन्म १ दिसम्वर सन् १८४७ को हुआथा।

महाराज वीर विक्रमशाह शमशेर जंगवहादुरने, जंगवहादुरकी कन्याके साथ विवाह किया जिसके गर्भसे ८ अगस्त सन् १८७५ ई० को जंगवहादुरके धेवते तथा नेपालसिंहासनके भावी उत्तराधिकारीने जन्मलिया।

नैपालका नवीन इतिहास और राज्यकी एकेश्वर शक्ति मंत्रियोंके ऊपर निर्भर रहनेसे नैपालका इतिहास मंत्रियोंकी कार्यावलीके ऊपरही लिखा गया है। नेपालमें प्रधान मंत्री ही महाराज समझाजाता है। महाराजका किसी विषयमें कोई अधि-

क़ार नहीं । राना जंगवहादुरके समयसेही मंत्रियोंकी ऐसी शक्ति वडी है, और उनके समयसेही नैपालका इतिहास एक नये मार्गपर चला है । नैपालकी पुरानी राजवंशावलीका इतिहास यहींपर समाप्त होता है आगे जंगवहादुर तथा उसके साथ मिलिहुई वातोंको लिखकर नैपालका इतिहास समाप्त करदिया जायगा। सन् १८४९ ई० में दलीपसिंहकी माता चांदकुमारी भागकर नैपालमें चली आई। राजा जंगवहादुरने नैपालके समस्त वडे २ घरानोंमें अपने लडकी लडकोंका विवाह करदिया था । विलायतसे लौटकर अपने देशमें नये कानून चलाये, सामरिक विभागका संस्कार किया और अपनी रक्षाके लिये शत्रुओंको अपना प्रभाव दिखाया ।

राना जंगवहादुरने अपने एक भाईको पापूला और भुतवलदेशका हाकिम वनादिया । सन् १७५५ ई० में श्लागिन ट्वईटने वैज्ञानिक तत्त्वकी खोजके लिये नैपालके मध्यभागमें जानेकी अनुमति मांगी, जंगवहादुरने वडी सरलतासे वैज्ञानिककी इस प्रार्थनाको स्वीकार किया ।

पहिली संधिके नियमानुसार नैपालके महाराज पांच वर्ष पीछे चीनके सम्राट्को नजराना दिया करते थे । नजराना लेकर दूत तिव्वतके मार्गसे जायाकरता था । एक वार तिव्वतवालोंने इस दूतका अनादर किया अतएव सन् १८५४ ईसवीमें नैपालके महाराजने तिव्वतवालोंको इस व्यवहारका दंड देनेके लिये उनके ऊपर सेना भेजी । भलीभांतिसे तैयारी करलेनेपर भी पहाडी मार्गोंके पार करनेमें नैपाली सेनाको वडा कष्ट उठाना पडा । यथेष्ट भोजन न मिलनेके कारण राना जंगवहादुरने आज्ञा दे दी कि, चामरीका मांस खाना दोषकी वात नहीं है । यद्यपि सपाट जमीनमें तिव्वती और भोटिये लोग परास्त हुए तथापि नैपालीलोग उनको जूङ्गा, केरंग और कुंटी गिरिमार्गसे नहीं हटासके । नवम्बर सन् १८५५ में भोटवालोंने केरंग और जुंगापर अधिकार किया तथा काठमाण्डूसे दूसरी सेना भेजीजानेपर वह एक एक करके सव स्थानोंको छोडगये । जव यह वखेडा दवगया तव जंगवहादुरने नया सामरिक कर लगाकर सेनाके नये छः दल तैयार किये । सन् १८५६ ईसवीके मार्च मासमें तिव्वतवालोंके संग जो संधि हुई, उसके अनुसार नैपालियोंने भी तिव्वतके छीनेहुए स्थानोंको फेरदिया और तिव्वतके लामा (राजा) ने भी वरसौडीमें नैपालके महाराजको १००००) रूपया देना स्वीकार किया और लासा राजधानीमें एक गोर्खे कर्मचारीका रक्खाजानाभी माना ।

अगस्त सन् १८५६ ई० में राना जंगवहादुरने नैपालके महामंत्रीका पद अपने भाई वमवहादुरको देकर स्वयं " महाराज " की उपाधि धारणकी तथा कक्सी और

लुमजुंग देशमें जाकर वहांका शाशन करनेलगे। उस काल मि० इलागिन ट्ईटर्न नैपालमें जानेकी आज्ञा पाईथी। सन् १८५७ ईसवीमें नैपालकी सेनामें विद्रोहके लक्षण दिखाई दिये परन्तु महाराज जंगवहादुरकी चेष्टासे शीघ्रही शान्ति होगई। इसही वर्षके जून मासमें भारत वर्षके वीच गदर हुआ। उसकाल महाराज जंगवहादुरने १२००० पैदल और ५०० गोलंदाज भेजकर अंग्रेजोंकी विशेष सहायता की। जून मासके अंतमें महामंत्री और सेनापतिका पद ग्रहण करके स्वयं भी अंग्रेजोंके शत्रुओंको दंड देनेके लिये अ गे वढे। सन् १८५८ ई० के समय विद्रोहियोंमेंसे लखनऊकी वेगमें और उसका पुत्र विरा जिसकद्र, नाना साहव, वालाराव, मम्मूखाँ, वेनीमाधव आदि प्रधान विद्रोहीसरदारोंने नैपालमें आकर अपनी रक्षा की। सन् १८५९ ईसवीमें नैपालके महाराजने अंग्रेजोंके अनुरोधसे वागियोंको राज्यसे वाहर निकाल दिया। सन् १८६० ईसवीमें नाना साहवकी स्त्रियोंने नैपालमें आकर आश्रय पाया १८७५ ईसवीतक लखनऊकी वेगम नैपालमें थापतलीके निकट रही थीं।

सिपाहियोंके युद्धमें इस प्रकार सहायता करनेसे अंग्रेजोंने नैपालराज्यको तराईका कुछ हिस्सा छोडदिया और सरदार जंगवहादुरको जी, सी, वी(Grand Cross of the Bath 71) की उपाधि दी। भारतके सिपाही विद्रोहके पीछे नैपाल-राजके इतिहासमें लिखने योग्य कोई भी वात नहीं हुई। केवल पहिली की हुई सन्धिमें अंग्रेजी राज्यसे भागा हुआ कोई दोषी यदि नैपालमें जा छिपे तो उसका लौटा देना और नैपालसे कोई दोषी भागकर अंग्रेजी राज्यमें छिपे, तो अंग्रेजोंको उसका लौटा देना ऐसा एक नियम जोड दिया गया।

सन् १८७३ ईसवीमें तिव्वतके संग पुनर्वार विरोध हुआ किन्तु शीघ्रही शान्त होगया। इसही वर्षमें जङ्गवहादुरने अंग्रेजोंसे सन्मान सूचक जी. सी. एस. आई की उपाधि पाई और चीन सम्राट्ने भी "थौंन--लिन--पिम--माको--काङ्ग--वांग, स्यान"÷ की उपाधिसे विभूषित किया। सन् १८७४ ईसवीमें महाराज जंगवहादुर इंग्लेन्ड यात्राके निमित्त परिवार सहित वम्वईमें गये और वहांसे पीडित होकर अपने देशको लौट आये जंगवहादुरके पीछे महाराज वीरसमशेरजंग राणावहादुरके के. सी. एस. आई. नैपालके प्रधान मन्त्री वनाये गये। जो सन् १८९९ ईसवीमें लार्ड कर्जनसे मुलाकात करनेके लिये कलकत्ते गये थे।

÷ इस उपाधिका अर्थ "सेनाके नेता सव कार्योंमें वडे वीर सवे प्रवन्धोंमें सनाके पक्के स्वामी महाराज"

नेपालके असली इतिहासका ठीक पता तो मिलताही नहीं क्योंकि नैपाली लोग अंग्रेज या दुसरे किसी विदेशीको काठमाण्डू राजधानीसे १५ मील दूरहीतक आने देते हैं। किन्तु अंग्रेजोंकी विशेष चेष्टासे इस नियममें कुछ२ ढिलाई हुई है। बहुधा नैपाली लोग चान्द्रमाससे वर्षकी गणना करते हैं । इसके अतिरिक्त तिथि, नक्षत्र मिलानेके निमित्त समय २ पर मास और दिन भी घटा लेते हैं। इन कारणोंसे वर्त्तमान वर्ष गणनाके संग पूर्ववर्ती नैपालियोंका अधिकतर मतभेद दिखाई देताहै और यही बात पुराने नैपाली राजाओंका राज्यकाल निर्णय करनेमें विघ्नस्वरूप है।

नैपालका धर्म्म।

नैपालमें हिन्दू और बौद्धोंका समान प्रभाव देखा जाता है, हिन्दू शिवमार्गी और बौद्ध लोग बुद्धमार्गी नामसे पुकारे जाते हैं। समयके प्रभावसे दोनों धर्म्मोंका ऐसा मेल होगयाहै कि, बहुतसे स्थलोंमें धर्म्मकृत्य और आचार व्यवहार बौद्ध धर्म्म मूलक हैं या शैव धर्म मूलक सो जाननेका उपाय नहीं है।

वर्त्तमान बौद्धके कृत्य, कर्त्तव्य, रीति, नीति, पुरोहितोंका विशेष अधिकार नीचे दरजेकी सामाजिक व्यवस्था यह सबही जातिभेदकी विधिके नियमोंपर स्थित हैं। नेवारी लोगोंमें आधे हिन्दू और आधे बौद्ध हैं। बुद्धमार्गी नेवारी लोग हिन्दू लोग संघर्षमें पडकर तीन श्रेणीमें बटगये हैं। हिन्दू चतुर्वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके समान इनमें भी बांडा, उदास, और जापू इन तीन श्रेणियोंकी उत्पत्ति हुई है। हिन्दुओंके क्षत्रिय वर्णके समान यहांके बौद्धोंमें कोई जाति नहीं है। हिन्दु-ओंमें वर्णकी पृथक्ताके लिये जैसी दृढ संधि है। यहांके नेवारी बौद्धोंमें उक्त तीन श्रेणियोंकी पार्थक्यरक्षा भी ठीक वैसी है। हिन्दूलोग जैसे वर्णगत नियमादिका अपव्यवहार करनेपर श्रेष्ठवर्णसे पतित होजातेहैं, नैपाली बौद्ध भी श्रेणीगत पार्थक्य रक्षा न करनेसे ठीक वैसेही पतित मानेजातेहैं। कसाई या पशुमांस बेचनेवाले, एक प्रका के गाने बजानेसे जीविका निर्वाह करनेवाले काठका कौयला बेंचनेवाले, चमडेका बनज करनेवाले, मत्स्यजीवी, नगरका कूडा हटानेवाले (भंगी) और (कपडे धोनेवाले) यह कई प्रकारके व्यापारी लोग जैसे हिन्दुओंमें बहुत नीच गिने जाते हैं वैसेही बौद्धोंमें भी।

बौद्धोंके तीन वर्णोंमें बांडा नामक याजक श्रेणी हिन्दू ब्राह्मणोंके समान है। इन दोनों श्रेणियोंके सिवाय और सब लोग जापू नामसे विख्यात हैं शूद्रके संग इनका मिलान हो सकताहै, जापुओंमें अधिक लोग किसान हैं, इस श्रेणीमें नैपाली दास दासी पाये जाते हैं। नीचश्रेणीका काम धन्धाभी यही लोग करते हैं।

बांडा और उदास लोगोंकोही एक प्रकारसे यथार्थ बौद्धाचारी कहा जा सकताहै। जापू लोग शैव और बौद्ध दोनोंके आचार विचारका पालन क

जापू लोग; शैव देवताको बौद्ध और बौद्ध देवताको शैव देवता समझकर पूजते हैं।

हिन्दुओंके चार वर्णोंमें जैसे अनेक प्रकारके छोटे २ विभाग हैं, बौद्ध त्रिवर्णमें भी वैसेही बहुतसे विभाग हैं। हिन्दू जाति भेदमें जैसे जीविका निर्वाहक लिये वंशका पुस्तेनी पेशा करते हैं बौद्धोंमें ठीक वैसेही प्रकारके कितने ही विभाग होगये हैं। इन लोगोंमें भी वैसेही वंशगत वनज होता है। इस वंशगत व्यौपारमें अब ऐसे बहुत वणिज हैं जिनमें जीविका निर्वाहके योग्य धन नहीं मिलता ऐसे अवसरपर यह लोग किसी प्रकारका एक साधारण वणिज (जैसे खेती) अवलम्बन करते हैं। किन्तु दूसरे वंशके व्यौपारको नहीं करते। अर्थात् लुहार लोहेसे जीविका न मिलने-पर खेती करैगा। किन्तु कुंभार या सुनारका काम नहीं करेगा। प्रत्येक नेवारीका। (चाहे बौद्ध हो या हिन्दू) एक एक रोजगार पुस्तेनी रोजगार है। जीविकाके निमित्त वह चाहे जिस कार्यको करते हों, किन्तु किसी न किसी समय उनको पुराना वंज करनाही पडैगा। और सब कार्य्य वंजके अनुसारही होंगे।

बौद्धोंमें बाँढा श्रेणीही सर्वसे श्रेष्ठ और माननीय है। पूर्वकालमें जो लोग वैराग्य अवलम्बन करतेथे नेवारी लोग उनको ही वाण्डा या बाँढा (संस्कृत पंडित) नामसे पुकारते थे। हिन्दोस्थानके बौद्ध संन्यासियोंको जैसे श्रमण कहा जाता है यहां भी वैसेही बाँढा नाम माना जाता है। पहिले यह श्रेणी अर्हत भिक्षुक और श्रावक इत्यादि लोगोंमें विभक्त थी। पूर्वकालमें यहां लोग संन्यासी थे। अब इन विभागोंका चिह्न तक नहीं पाया जाता। जब बौद्ध मठोंके निर्माणका काम बन्द होगया उस समय इन लोगोंके संन्यास ग्रहणकी एकान्त कर्त्तव्यता भी लोप होगई। अर्हत और श्रावक लोग आजकल देखे तो जाते हैं, किन्तु वह अब किसी मतसे 'भिक्षु' नहीं हैं और इस समय सोने चाँदीका वंज करते हैं। यहांके बाँढा लोगोंमें नौ श्रेणी हैं प्रत्येक श्रेणीका एक एक पुराना पेशा है। इन नौ श्रेणियोंमें गुभाल या गुभाजु,नामक श्रेणीही प्रधान है। "गुरुभज" या "गुरुसाहेब" शब्दसे यह शब्द निकला है प्रोहिताई करना ही इनका वंशगतकर्त्तव्य कार्य्य है। किन्तु अब यह लोग केवल इसही कार्यको नहीं करते, इनमें बहुतसे लोग दरिद्र हैं। बहुतसे लोग अट्टालिका निर्माण दाजीका काम और सिक्कादि ढालनेका काम करते हैं, बहुतसे महाजनीभी करते हैं इनमें जो लोग पढे लिखे और धर्म कृत्यादि जानते हैं, वही पंडित और पुरोहि-तका कार्य्य करते हैं। इस धर्मकार्य्यको कराते हुएभी कोई २ दूसरे वणिज करते हैं। गुभाजुओंमें जो लोग प्रोहिताई करते हैं उनको वज्राचार्य्यकी उपाधि मिलती है। प्रत्येक गुभाजुको जवानीसे पहिले वज्राचार्य्यका काम सीखना पड़ता है। वज्राचार्य्य

लोग घी और अन्नसे अग्निमें होम करते हैं, होम और मंत्रादिकोंको बालकपनमें ही सीखना पडता है सीखनेके समयतक उसको भिक्षुक कहते हैं। कोई अपने घरमें भी सीखनेकी दशामें प्रोहिताई नहीं कर सकता। प्रत्येक शिक्षित भिक्षुकको सन्तान उत्पन्न करनेसे पहिले वज्राचार्य्यकी उपाधिसे दीक्षित होना पडता है। दारिद्र मूर्खता पापाचार या दूसरे किसी कारणसे यदि कोई सन्तान उत्पन्न करनेसे पहिले वज्राचार्य्य न होसके तो वह और उसके वंशवाले सदाके लिये वज्राचार्य्यकी उपाधि पानेसे निराश हो जाते हैं और भिक्षुक नामसे पुकारे जाते हैं गुभाजुश्रेणीके बालकोंको वज्राचार्य होनेका अधिकार नहीं है। वज्राचार्य्य जब यजन करते हैं, तब शिक्षार्थी भिक्षुक लोग उनकी सहायता करते हैं।

सुवर्ण चाँदीका वजन करनेवाले भिक्षुक नामक श्रेणीके लोगभी ऐसी सहायतामें अनधिकारी नहीं हैं। भिक्षुक लोग देवताको स्नान कराना, शृंगार कराना, 'उत्सवके समय उठाना' देव सम्पत्तिकी रक्षा करना, उत्सवकी तैयारी और तत्त्वावधान इत्यादि कार्य करते हैं. गुभाजु सन्तान दीक्षा भ्रष्ट होनेपर वज्राचार्य्यकी पदवी तो नहीं पासकती, किन्तु श्रेष्ठ वंशकी ब्राह्मण सन्तान हिन्दू होनेपर भी यदि गुभाजु लोगोंके द्वारा दत्तक रूपसे ग्रहण कीजाय तो उसको नियमानुसार शिक्षादानके पीछे वज्राचार्य्य बनाया जासकता है

गुभाजु और भिक्षुकोंके सिवाय बाँढ़ा लोगोंमें और कोई श्रेणी याजकताका कोई कार्य्य नहीं कर सकती। दूसरी सात श्रेणियोंके अतिरिक्त बाँढ़ा लोगोंमेंसे बहुतसे वंशरीतिके अनुसार सुवर्ण चांदीके गहने पीतल और लोहेके वर्त्तन बनाना, देवतागठन: तोप बन्दूक आदि बनाना, और काठमें खुदाईका काम इत्यादि पेशा करते हैं। इन नौ श्रेणियोंमें परस्पर लेन देन और खान पान चलता हैं। बांढालोग अपनी नौ श्रेणीके सिवाय और किसीके संग भोजन पान नहीं करते. यदि यह लोग नीच बौद्धोंके संग लेन देनका व्यवहार और भोजन पान करें तो पतित होजाते हैं और उन लोगोंमें मिलजाते हैं जिनके छूनेसे उनकी ज्याति नष्ट होती है। बाँढ़ालोग शिर मुण्डा हुआ रखते हैं। किन्तु दूसरे लोग रुचिके अनुसार बाल रखते हैं। बहुतसे बौद्धलोग बाल नहीं कटवाते और बहुतसे शिखाकी जगह लम्बी वेणी रखाते हैं। कितनेही इस वेणीको कुण्डलाकार करके चलते हैं, बाँढालोगोंकी स्त्रियोंको बालोंके सिंगारका बडा शौक होता है, पहरावेमें कोई विशेषता नहीं है। किसी उत्सवादिके समयमें यह लोग प्राचीन कालके बौद्धमठ वासियोंके समान वस्त्र पहर लेते हैं। पहिले एक चुस्त अंगरखा पहरते हैं जिसका नाम "निवास" है। एक चादर कमरमें बाँध लेते हैं। चीवर कमरतक लटकता रहता है और निवांस पैरोंतक लटकता है कमरके पास चौवन्दी जोडेके समान

एक कोंचकान रहता है चीवर और निवासका कमरमें भी एक जोड रहता है। पूर्वकालमें नेवारियोंकी एक सम्प्रदायिका पहिरावा था वांढा लोग सदा उसकोही काममें लाते हैं। उत्सवके समय जब उनको देवमूर्त्ति लेकर कोई काम करना पडता है तब केवल दहिना हाथ जामेंसे बाहर निकाल लेते हैं।इससे दहिने हाथके संग२आधी छाती भी उघड जाती है। यह पहिरावे लाल या महावरी रंगके होते हैं। बहुतसे लोग पीले रंगके कपडेभी पहिरते हैं वज्राचार्य्य और भिक्षुक लोगोंके पहिरावेमें कुछ भेद नहीं है, केवल शिरकी सजावट ही अलग है। वज्राचार्य्यके शिरपर लाल रंगका मुकुट हाथ या कटिबन्धमें शास्त्रीय ग्रन्थ तथा वज्रदण्ड और घण्टा, गलेमें १०८ दानेवाली विचित्र रंगकी स्फटिक माला या और किसी प्रकारकी माला पडी रहती है, माला और छोटा घंटा एक ओर और दूसरी ओर छोटा वज्र लटकताहै; तथा एक विचित्र वर्णका स्फटिक जडाऊ वज्रभी धुकधुकीकी समान झूलता रहता है । भिक्षुकोंके शिरपर रंगी हुई पगडी जिसको उडान टोपी कहते हैं शोभा पाती हैं। इस टोपीके ऊपर एक पीतलका बटन या वज्र रहता है और टोपीके सामने एक चैत्यकी आकृति रहती है। साधारण उत्सवोंमें और वांढायात्रामें वज्राचार्यलोग भी उडान टोपीका व्यवहार करते हैं। भिक्षुकोंके गलेमें साधारण माला दहिने हाथमें "खिंखिलिका" नामक दण्ड और बायें हाथमें "पिंडपात्र" नामक पीतलकी बटलोई रहती है। लोग इसमें भीख डाल देते हैं।

वांढालोग जहांपर सदा निवास करते हैं, वह स्थान विहार या मठके नामसे विख्यात है। यह विहार या मठ प्रधान २ बौद्ध मन्दिरोंके निकट बने हुए हैं जो वंश प्राचीन कालसे जिस विहार या मठमें वास करते आये हैं उनमें एक प्रकारका ऐसा घना संबंध होगया है कि, एक विहार या मठवासियोंको एक एक छोटा सम्प्रदाय भी कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी इस प्रकार एक एक सम्प्रदायमें कितनेही आचार व्यवहार और रीति नीति प्रचलित होगई हैं । अपनी रीतिं नीतिसे प्रत्येक मठका आदमी जानाजाताहै। वांढालोग शान्त स्वभाव; परिश्रमी और सदाचारी होते हैं, " किन्तु अब उनमें बौद्धधर्मोक्त संन्यासी और गृहस्थियोंका आचार व्यवहार पहला सा नहीं है। बौद्ध धर्म्ममें कहीं परभी मत्स्य मांसाहार या मादक पदार्थोंके सेवनका नियम नहीं है और मध्याह्नके पहिलेही दैनिक भोजन समाप्त करनेका विधान है। किन्तु यह लोग पुराने बौद्ध संन्यासियोंके स्थानापन्न होकर भी इन साधारण नियमोंका पालन नहीं करते हैं। और अवसर पातेही बकरे व भैंसोंका

भोजन करजाते हैं अपने हाथसे बकरा मारते हैं। सुरा अधिक पीते हैं और दिनमें इच्छानुसार चार पांच वार भोजन करते हैं। सुरापी होनेपर यह लोग मतवाले नहीं बनते। दूसरे बौद्ध बांढालोगोंको ठीक ब्राह्मणके समान मानते हैं। जैसे हिन्दूगण ब्राह्मणोंको दान देना पुण्यदायक समझते हैं वैसेही बौद्ध लोग भी बांढालोगोंको दान देना उत्तम समझते हैं। बांढालोगभी धर्मात्मा लोगोंसे दान लेनेके लिये सदा तैयार रहते हैं।

उदास लोग वाणिज्य व्यवसायी तथा हिन्दू वैश्य वर्णके समान हैं। इनमें सात दरजेहैं। पहिले श्रेणीका नाम उदास है। तिब्बत और चीनके संग जितना वाणिज्य होता है, वह सब उदास लोगोंके हाथमें है। इन सात श्रेणीके कई व्योपार वंशानुगत हैं। किन्तु बांढालोगोंके समान व्यापार करनेके लिये विवश नहीं है। यह सबही लोग महाजनी करते हैं, विशेषकर मिश्र धातुओंके द्रव्यादि तैयार करना नित्यके वर्त्तने योग्य वरतन वनाना, सुनारका कार्य्य, खपडे और ईंटवनाना इत्यादि कार्य करते हैं। उदास लोग गौण बौद्ध हैं। प्रगटमें हिन्दू देव देवियोंकी पूजा नहीं करते अथवा ब्राह्मणोंसें पुरोहिताईका कार्य नहीं कराते। धर्म्म कर्म्ममें वज्राचार्य्यका उपदेश लेते हैं यह लोग कभी भी वाँढा श्रेणीमें प्रवेश नहीं करसकते। किन्तु खान पानके लिये उनके दलमें मिल सकते हैं सातों श्रेणीके उदास लोग एकत्र खान पान करते हैं। परन्तु जापुओंके संग आहार नहीं करते एक समय विशेष दरिद्री होगये थे। व्यौपारकी हीनतासे अवतक ऊंची दशा नहीं हुई है। इस समय बाँढा लोगंही व्योपारमें प्रधान गिनेजाते हैं।

शेष समस्त बौद्धही जापू श्रेणीमें हैं। इनकी रीति नीति और आचार व्यवहार विशेष विगडा हुआ है इन्होंने बौद्धाचार विचारके संग हिन्दुओंका आचार व्यवहार अप्रकट रूपसे मिलालिया है। यह लोग उत्सवके समय हिन्दू मन्दिरोंमें जाकर पूजा करते हैं। विवाह और मृतक संस्कारमें भी बौद्ध और हिन्दुओंके आचार व्यवहार मिलाकरही कार्य करते हैं। इनके सामाजिक कार्यके समय वज्राचार्यके संग एक पुरोहित रहता है इन लोगोंमें तीन श्रेणी हैं, सब श्रेणियोंमें वंशगत व्योपार है। छः श्रेणियोंके खेती आदि कर्म हैं एक श्रेणी भूमिका परिमाणादि कार्य और एक कुम्हारकी वृत्ति करती है कृषिकार्यसे जीविका निर्वाह करनेवाली छः श्रेणियोंका नाम जापू है। उदास लोगोंके पीछेही इनका दरजा है। तीस प्रकारके जापुओंमेंसे यथार्थ जापूलोग सामाजिक विधानमें दूसरी श्रेणियोंकी अपेक्षा आदरके योग्य हैं। असली जापूलोग अपनी छः श्रेणियोंके अतिरिक्त दूसरी श्रेणियोंके संग भोजन पान

और लेन देनका व्यवहार नहीं करते । दूसरी चौवीस श्रेणियोंमेंसे पटवे, रंगरेज, 'लुहार' 'कुलु' 'माली' ठीकेदार, जर्राह, नाई, नीची श्रेणियोंके लुहार, डोम, ग्वाले, वढई, द्वारपाल, डोली उठानेवाले इत्यादि प्रधान हैं इनमेंसे एक श्रेणीका नाम सर्म्मी है । तेल वनाना उनका जातिव्यौपार है । नेवारियोंमें अव यह सर्म्मि लोगही धनी हैं । अव इन्होंने भी उदासी लोगोंके समान महाजनी और व्यौपार करना आरंभ किया है । हिन्दूलोग पिछले कहे मिश्रित वौद्ध लोगोंके हाथका पानी नहीं पीते तथापि सर्म्मी आदि कई श्रेणियें नेपाल राज सरकारकी कृपासे जलाचरणीय (जिनके हाथका जल पीलिया जाय) वन गई हैं। अव वौद्धोंका यह जातिभेद धीरे २ दृढ होता जाता है । इनके अतिरिक्त जिन व्यौपारोंके करनेसे वौद्धोंकी जाति चली जाती है उनके करनेवाले आठ श्रेणीके लोग पतित गिनेजाते हैं इनकी छुई हुई किसी वस्तुको हिन्दू या वौद्ध कोई भी नहीं लेता । इन आठ श्रेणियोंमें परस्पर खान पानका व्यवहार नहीं है । इस देशके वर्ण ब्राह्मणोंके समान नीच श्रेणीके वर्ण वाँढा लोगही उक्त नीच श्रेणीके लोगोंकी याजकता करते हैं ।

नेपाली वौद्धोंमेंसे वाँढा लोगोंका पंचायतमें धर्मसम्वन्धीय वातोंकी मीमांसा होती है और "गात्ति" के विधानानुसार सामाजिक रीतिकी भी मीमांसा की जाती है। किन्तु कोई वात विचाराधीन होनेपर गोर्खालोगोंको ब्राह्मण-प्रधान पुरोहित या राजगुरुके अधीनही होना पड़ता है । इस विषयमें वौद्ध विचारक नहीं होता है । राजगुरुके विचारालयका नाम धर्माधिकरण है और राजगुरु स्वयंही धर्माधिकारी हैं। वह हिन्दूशास्त्रके अनुसार, जातिगत विवादका विचार करता है विचारमें धनदण्ड, कारावास, प्राणदण्ड आदिमेंसे चाहे कोईसा दण्ड हो अपराधी वौद्ध होनेपर भी हिन्दू शास्त्रके अनुसार वरावरही दण्ड पाता है। राजगुरुलोग इनको दण्ड देनेके लिये वौद्ध शास्त्रका विचार नहीं करते ।

नैपाली वौद्ध तिव्वती लामा लोगोंको प्रधान वौद्ध मानते हैं। यह लोग लासाको वौद्ध धर्मका प्रधान स्थान जानते हैं। किन्तु धर्मविषयमें दोनों दशाओंमें कोई संवन्ध वर्त्तमान नहीं है । तिव्वती लोग नैपाली वौद्धोंको हिन्दुओंसे अच्छा समझते हैं। वह स्वयंभूनाथ वोधनाथ और केश चैत्यका दर्शन करने आते हैं, किन्तु नैपाली वौद्धोंका समाचार कोई भी नहीं लेता और न उनके उत्सवादिमें कोई जाता है.

"गात्ति" के नियमानुसार प्रत्येक श्रेणीके प्रत्येक परिवारके स्वामीको सामाजिक लोगोंका एकवार न्योता करना पडता है । इस प्रकार एक २ भोजमें हजार २ रुपयेसे भी अधिक लगजाते हैं । गरीवको इस प्रकारका भोज देना वडा कठिन

पडजाता है। ऐसा भोज देनेवाला जातिमें गिना जाने लगता है। एक नियम यह है कि, यदि किसी परिवारका कोई पुरुष मरजाय तो उस जातिके प्रत्येक परिवारसे एक एक आदमीको मृतकके संग श्मशान तक जाना पडता है और बारहवींमें अशौचान्तके दिन भी उपस्थित होना पडता है। नेपाली बौद्धोंका मृतकदेह जलादिया जाता है। प्रत्येक श्रेणीका दाह स्थान अलग २ है। तथापि सब नदीके किनारे ही हैं। गात्तिका नियम तोडनेसे अपराधी अपनी जातिके प्रधान लोगोंके विचारमें धन दण्ड पाता हैं भारी अपराधमें जातिसे छूटता है। जातिसे छूटे हुए पुरुषका मृतक देह मार्गमें डालदिया जाता है। अन्तमें मुर्देफरोश लोग वहांसे उठाकर वनमें फेंक देते हैं।

नेपालीबौद्धोंकी उपासना।

नेपाली बौद्धलोग आदि चैतन्यको आदि बुद्धनामसे और आदिकारण रूपिणीको आदि प्रज्ञानामसे पुकारकर सर्व श्रेष्ठ देवीरूपसे उपासना करते हैं। आदि बुद्ध स्वयंभू ज्ञानमय और कर्त्ता हीन हैं। वह स्वयंही सबके कर्त्ता है।

अधिकारणरूपिणी आदि प्रज्ञा आक्षि बुद्धकाही आश्रय रूप हैं। इनके मतमें आदि बुद्ध या आदि प्रज्ञाकी कोई मूर्ति कल्पित नहीं होसकती, न किसी मंदिर या शिलामें कोई मूर्ति देखी जाती है। नेपालका प्रधान बौद्धमंदिर आदि बुद्धके नामपर उत्सर्ग किया हुआ है।

नैपालमें ज्योतिकोही आदि बुद्धका स्वरूप समझकर नमस्कारादि करते हैं। समस्त ज्योतियोंकी पूजा इस प्रकारसे नहीं की जाती। सूर्यकिरणसे निकलीहुई ज्योतिही आदि बुद्धकी भाँति पूजीजाती है। सूर्यके प्रकाशको भी वह ज्योति मानकर ही पूजा करते हैं।

बौद्धलोग त्रिमूर्ति या त्रिरत्नको पूजते हैं। बुद्ध, धर्म, संघ, इनकोही त्रिरत्न मानागया है। साधारणरीतिसे संघ पुरुषरूपसे और धर्म स्त्रीरूपसे कल्पित होता है। यह स्त्रीमूर्ति धर्म ही प्रज्ञादेवी, धर्मदेवी और उग्रतारादेवीके नामसे पुकारा जाता है। त्रिरत्न सेवामें अधिकार भेदभी है। प्रायः सब मंदिरोंमें ही त्रिरत्न या त्रिमूर्तिकी स्थापना रहती है औरलोग उनकी पूजा करते हैं। घरके बड़े दरवाजेपर चौखट या भीतमें, शयनागारकी दीवारपर, बुद्ध और बोधिसत्वके मंदिरोंपर बहुधा यह त्रिमूर्ति बनीरहती है। त्रिमूर्तिकी तीनोंमूर्तियें निकटही बनी होती हैं। कहींपर धर्मकी और कहीं बुद्धिकी मूर्ति निकट बनी रहती है यह तीनों मूर्त्तियें खिले हुए कमलके ऊपर विराजती हैं बीचकी मूर्ति बड़ी होती है।

२ मानव बुद्ध।

बुद्ध।	तारा।	बोधिसत्व
१ विपंश्वी बुद्ध।	विपश्यन्ती।	महामति।
२ शिखी।	शिखिमालिनी।	रत्नधर।
३ विश्वभू।	विश्वधारा।	आकाशगञ्ज।
४ ककुच्छन्द।	ककुद्मती।	शकमंगल।
५ कनकमुनि।	कंठमालिनी।	कनकराज।
६ कश्यप।	महीधरा।	धर्मधर।
७ शाक्यसिंह।	यशोधरा या वसुंतरा।	आनन्द।
८ दीपशंकर बुद्ध।	... ...	... ...
९ रत्नगर्भ बुद्ध।		

मानव बुद्धोंकी स्त्रियें तारा हैं, परन्तु बोधिसत्वें पुत्र नहीं शिष्य हैं। यह सबही पीले या सुनहरी रंगके भूमिस्पर्श मुद्रायुक्त और सिंहवाहन हैं। जो लोग ध्यानी बुद्ध पांच मानते हैं वह तन्त्रमतानुसारीनामसे दक्षिणाचारी, और छः ध्यानी बुद्धोंके माननेवाले तन्त्रमतानुसार वामाचारी नामसे पुकारे जाते हैं।

सातवें मानव-बुद्ध शाक्यसिंहकी चरण पूजाभी नैपालमें होती है। इनमें आठ मंगल चिन्ह हैं श्रीवृत्स या कौस्तुभ चिह्न, पद्म, ध्वज, कलश, चामर, छत्र, दो मत्स्य, यह क्रमानुसार बने होते हैं, इसही भांतिसे सहस्र चक्र चिन्हभी हैं।

मञ्जुश्री बोधिसत्व नैपालियोंमें विशेषतः पूजेजाते हैं जो मंजुश्री मंजुघोष और मंजुनाथके नामसे विख्यात हैं, नैपालके समस्त स्थानोंमें उनके मंदिर हैं, प्रधान मंदिर वह है जो स्वयंभूनाथके निकट बना हुआ है। नैपालीलोग उनको विघ्नविनाशक और रक्षाकरता समझते हैं। शिलाजीवीलोग इनको इस प्रकारसे पूंजते हैं जैसे हिन्दूलोग विश्वकर्मा और सरस्वतीको। इनकी प्रतिमा कहीं दो भुजा और कहीं चारभुजाकी होतीं हैं। दो भुजावाली प्रतिमाके एक हाथमें खड्ग और एक हाथमें पुस्तक होती है। चौभुजी प्रतिमाके दो हाथोंमें धनुष बाण रहता है। इनके मन्दिरके सामने एक पत्थरका टुकडा रहता है, उसमें मंजुश्रीके चरणचिन्ह बने रहते हैं। चम्पादेवी पर्वतपर इनकी एक स्त्री वरदा (लक्ष्मी) का और फूलचोया पर्वतपर दूसरी पत्नी मोक्षदा (सरस्वती) का मंदिर बना हुआ है।

नैपाली बौद्धोंमें हिन्दुओंका शैवाचार और तन्त्राचार मिलजानेसे वह लोग शैवदेवता

और योन्यादिकी उपासना किया करते हैं। नैपालमें स्वयम्भूनाथ ही आदि बुद्धरूपसे और गुह्येश्वरी आदि प्रज्ञारूपसे पूजी जाती हैं। ध्यानी बुद्धोंमें अमिताभ, उनकी शक्ति और पुत्र तथा मानव बुद्धोंमें शाक्यसिंह और बोधिसत्व मंजुश्री सबसे प्रधान देवता हैं। इनके अतिरिक्त बुद्धचरण, मंजुश्रीचरण और त्रिकोण आदि भी विशेष भावसे पूजेजाते हैं।

नैपालीलोग धातुमंडल नामक एक दूसरे चिन्हकी पूजा भी करते हैं धातुमंडल दो प्रकारके हैं;--वज्रधातुमंडल और धर्मधातुमंडल, वज्रधातुमंडल वैरोचन बुद्धके संग और धातृमंडल मंजुश्री बोधिसत्वके संग सम्बन्ध रखताहै। वडे २ बौद्ध मंदिरोंके पास यह धातुमंडल स्थापित होते हैं, इनका आकार गोल और अष्टकोण रहता है। पद्मका चिन्ह भी इनमें बना होताहै। प्रतिमा स्थापन या चरणचिन्ह बनानेके लिये ऐसे मंडलकी आवश्यकता होतीहै। जिस प्रकार बुद्ध या बोधिसत्वोंके पवित्र स्थानादिमें या उनके ऊपर चैत्य बना रहता है, वैसेही देवताओंके पवित्र स्थानादिमें वडे २ धातुमंडल बने हुए देखेजाते हैं। इन मंडलोंमें बौद्ध देवी देवताओंकी मूर्तियें या चरणचिन्ह विराजमान होते हैं। इस प्रकारसे और भी अनेक मंडल हैं।

पौराणिक देवताओंकी भांति बौद्धोंमें भी दिक्पाल देवता होते हैं जैसे;--खड्गधारी खड्गराज पश्चिम, चैत्यधारी चैत्यराज दक्षिणे, इत्यादि २। शैवमार्गियोंके निम्नलिखित देवता बुद्ध और हिन्दू दोनों सम्प्रदायमें ही पूजे जाते हैं।

भैरव और महाकाल, भैरवी या काली, गणेश, इन्द्र, और गरुड, भैरवका मुख मत्स्येन्द्रनाथके रथके सन्मुखभागमें लगा रहताहै। यद्यपि बौद्धलोग इस मुखको रथका साजही बताते हैं, तथापि पवित्र होनेके कारण त्रपिताडु विहारमें स्थापितहै। दैत्यके मृतकदेहपर आरूढहुई भैरवकी मूर्त्तियें अनेक बौद्ध मन्दिरोंके सन्मुख मन्दिरकी रक्षाकर्त्ता या द्वारपालरूपसे प्रतिष्ठित देखी जाती हैं। महाकाल गणाधिपति गणेशके मुक्त होनेपर भी इनकी प्रतिमा मान्दिरके दोनों ओर देखी जातीहै। मंजुश्रीके चरणमंडलकी एक ओर गणेश और दूसरी ओर त्रिशूलधारी महाकालकी मूर्त्ति है यही महाकालकी प्रतिमा वहुतसे स्थानोंमें वज्रपाणि बोधिसत्वके रूपसे पूजी जाती है।

बौद्धगण सिद्धिदाता गणेशको बुद्धिदाता जानकर पूजते हैं। जहां पशुपति दंडदेवका मंदिर है, वहींपर अशोककन्या चारुमतीका बनाया हुआ गणेशजीका एक पुराना मंदिर विराजमान है। चारुवीथी बिहारके बांछा प्रोहितही इन गणेशजीके पुजारी हैं।

यद्यपि काली या भैरवी मूर्त्ति किसी वौद्ध मंदिरमें या मंदिरके निकट
जाती हैं, तथापि काली इत्यादिके मंदिरमें जाकर वौद्धलोग उनकी पूजा
और वहुतसे वौद्ध लोग इन मंदिरोंके पुजारी भी हैं।

इन्द्रकी अपेक्षा इन्द्रके वज्रको वौद्धलोग पवित्र और माननीय समझते हैं।
शास्त्रमें लिखाहै कि, एक समय वुद्धने इन्द्रको जीतकर उसके वज्रको जयी
जानके छीनलिया था। भोटिये इस वज्रको " दोर्जे " कहते हैं।

स्वयंभूनाथके मंदिरके सामने धर्मधातुमंडलके ऊपर पांच फुटका एक
हुआ है। अक्षोभ्य वुद्धका चिन्ह वज्रहै। एक वज्र सीधा और एक आडा
विश्ववज्र कहा जाताहै। यह अमोघसिद्धि वुद्धका चिन्हहै। वौद्धलोग इ
भांतिसे पूजते है जैसे तांत्रिकलोग महादेवजीको।

हारीती (शीतला) और गरुडकी मूर्ति सव वौद्धमंदिरोंमें है। गरुडके
अर्द्धनारी सर्पाकार नागकन्याकी मूर्त्ति है। अमोघसिद्ध वुद्धका वाहन भी
इस वाहनका मंदिर अलग नहीं होता। योनि आदिकी पूजा भी वौद्धलोग

जैसे वौद्धगण हिन्दू देवी देवताओंकी उपासना करते हैं वैसेही वहुतसे सनातन
धर्मावलंवी भी वौद्धदेवी देवताओंको पौराणिक प्रतिमा समझकर पूजते हैं।
गुह्येश्वरीको भगवतीकी प्रतिमा और मंजुश्रीको सरस्वती मानकर मानते हैं
मंजुश्रीकी दोनों स्त्रियें भी लक्ष्मी और सरस्वतीकी भाँति पूजी जाती हैं।
अमिताभ वुद्धभी विष्णुजीके अवतार जानकर पूजे जाते हैं।

नैपालके शैव हिन्दूगण अधिकांश तांत्रिकशैव हैं; परन्तु शाक्त वहुत थोडे
देवी देवताओंका वर्णन उत्सवादिवर्णन स्थानमें करहीं आये हैं अतएव यहांपर पुन-
र्वार लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती।

इति नैपालका इतिहास समाप्त।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,	खेमराज श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस,	" श्रीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
कल्याण-वंबई.	खेतवाडी-वंबई.